मेरा आशय साहित्य की कीमत कम रख कर स्वल्प व्यय द्वारा जनता को लाभ पहुँचाने का है। परन्तु वर्तमान समय में मंहगाई इतनी बढ़ गई है कि मेरी भावना कार्यान्वित नहीं हो पाती तथापि जितना बन सके ध्येय के नजदीक रहने का ही उद्देश्य है।

इस साहित्य की रचना में एक गुजराती भाषा की चौपाई का (जो श्री गोंडल सम्प्रदाय के विद्वान् मुनि की रचना है) आधार लिया है इसलिए उनके प्रति मैं कृतज्ञता प्रकट किये बिना नहीं रह सकता।

भवदीय
—लेखक

विषयानुक्रमणिका

र्ण कर जवानी में प्रवेश कर रहा है। वह शरीर की सुन्दरता वं पूर्वोपार्जित पुण्य से दर्शकों के दिल को हरण करे जैसा ाग्यशाली भी है।

अपने पड़ाव से दृष्टि गोचर होती हुई नगरी के दिखाव । आकर्षित होकर वह माता-पिता की सेवा में उपस्थित होकर हने लगा कि पूज्य पिताजी चिरकाल से पन्थ काटते काटते ाज अपना प्रयास सफल हुआ है। महल, मन्दिर और अट्टा- लकाओं से सुशोभित यह नगरी स्वर्ग को भी पराजित करने ाली है। इसलिए आपकी आज्ञा हो तो मैं अपने मित्रों के साथ सकी शोभा देखने को जाऊँ और शहर की रचना को देख कर रा मन प्रसन्न करूँ। यह नगरी बाहर से ही इतनी रमणीय ान ही है तब अन्दर कैसी होगी! अतएव जाने की आज्ञा ीजिये।

यह भारतीय शिष्टाचार है। पूर्वकाल में यहां ऐसी शिक्षा ी जाती थी जिससे शिक्षित होने के साथ साथ सन्तान में विनय, ोग्यता और पात्रता बढ़ती थी। उच्च श्रेणी पर पहुंचने पर भी ुवक अपने माता-पितादि गुरुजनों के प्रति नम्रता पूर्ण शिष्ट प्रवृत्ति करते थे। उनकी आज्ञा मानते और प्रत्येक कार्य उनकी आज्ञा प्राप्त करके करते थे। आज की तरह उद्धत, निरंकुश और अविनयी नहीं होते थे। दुर्भाग्य से वर्तमान समय के युवकों एवं युवतियों में स्वच्छन्दता और निरंकुशता का प्रवेश हो गया है यह पाश्चिमात्य शिक्षा का परिणाम है। पारस्परिक जीवन का सुख पूर्व प्रणाली से था या वर्तमान प्रणाली से है यह वाचक स्वयं विचार करें।

हुए यह जवानी में प्रवेश कर रहा है। यह शरीर की सुन्दरता एवं पूर्वोपार्जित पुण्य से दर्शकों के दिल को हरण करे ऐसा लावण्यशाली भी है।

अपने महल से दृष्टि गोचर होती हुई नगरी के दिखाव से आकर्षित होकर यह माता-पिता की सेवा में उपस्थित होकर कहने लगा कि पूज्य पिताजी चिरकाल से पन्थ काटते काटते आज अपना प्रयास सफल हुआ है। महल, मन्दिर और अट्टालिकाओं से सुशोभित यह नगरी स्वर्ग को भी पराजित करने वाली है। इसलिए आपकी आज्ञा हो तो मैं अपने मित्रों के साथ इसकी शोभा देखने को जाऊँ और शहर की रचना को देख कर मेरा मन प्रसन्न करूँ। यह नगरी बाहर से ही इतनी रमणीय मन हरी है तब अन्दर कैसी होगी! अतएव जाने की आज्ञा दीजिये।

यह भारतीय शिष्टाचार है। पूर्वकाल में यहां ऐसी शिक्षा दी जाती थी जिससे शिक्षित होने के साथ साथ सन्तान में विनय, योग्यता और पात्रता बढ़ती थी। उच्च श्रेणी पर पहुंचने पर भी युवक अपने माता-पितादि गुरुजनों के प्रति नम्रता पूर्ण शिष्ट प्रवृत्ति करते थे। उनकी आज्ञा मानते और प्रत्येक कार्य उनकी आज्ञा प्राप्त करके करते थे। आज की तरह उद्धत, निरंकुश और अविनयी नहीं होते थे। दुर्भाग्य से वर्तमान समय के युवकों एवं युवतियों में स्वच्छन्दता और निरंकुशता का प्रवेश हो गया है यह पाश्चिमात्य शिक्षा का परिणाम है। पारस्परिक जीवन का सुख पूर्व प्रणाली से था या वर्तमान प्रणाली से है यह वाचक स्वयं विचार करें।

कानों की पंक्तियाँ निरीक्षकों का दिल आकर्षित करती थीं। हवे-
लियों के नीचे के खण्डों में व्यापारी लोग अनेक प्रकार के माल
एवं किरानों की सजावट कर व्यापार करते हुए दिखाई देते थे।
देशी विदेशी स्त्री पुरुष विविध प्रकार की पोशाक में आवश्यक
वस्तुएँ खरीद रहे थे। जिनके उपर के खण्डों में रंग बिरंगी सजा-
वट के आवास घर थे। उनमें राग-रंग हो रहे थे जो पथिकों का
मनोरंजन करते थे। राज-मार्ग पर सेठ साहूकारों के गाड़ी घोड़े
इत्यादि दौड़ रहे थे जो पथिकों को सावधानी सूचक आवाज
भी देते थे।

इस प्रकार शहर की शोभा देखता हुआ हंसराज अपनी
मित्र मंडली से विनोद करता चला जा रहा है। इतने में बाजार
के बीच एक सतखण्डी हवेली दिखाई दी जिसके अन्दर अनेक
प्रकार के राग-रंग, गान-तान आदि हो रहे थे। आगन्तुक खड़े
रहकर यहां का दृश्य देख देख कर विस्मित होते थे।

इसी समय हवेली के दूसरे खण्ड के झरोखे में बैठी हुई
नायिका की दृष्टि बाजार में खड़े हुए इस युवक पर पड़ी। उसे
देखते ही उसने "यह कोई अमीर का पुत्र है यदि इसे अपनी
जाल में फंसाया जाय तो, काफी आमदनी हो सकती है" यह
विचार कर अपनी एक दूती को भेजी। चरित्रहीन कुलटाएँ ऐसी
ताक में ही रहती हैं। उनका यही व्यवसाय होता है।

दूती कुंवर के पास आकर हाथ जोड़ कर कहने लगी—हे
भाग्यशाली ! आप यहां क्यों खड़े हैं ? अन्दर पधार कर हवेली
का और हवेली के अन्दर रही हुई विभूति का अवलोकन करिये।

हम पर कृपा कर हवेली को पावन कीजिये और यहां के स्वर्गी सुख एवं अप्सराओं से अपना जीवन भी सफल बनाइये।

अनुभवहीन हंसराज अपने मित्रों सहित हवेली में प्रविष्ट हुआ।

बड़े बड़े शहरों में मनुष्यों को भूलभुलैया में डाल कर सर्वस्व हरण करने के कैसे कैसे साधन होते हैं और उनमें पतं की तरह पड़कर मनुष्य अपना सर्वनाश सुलभता से कैसे क डालता है, यह विवेकीजनों के लिये विचारणीय बात है। भर्तृ हरि ठीक ही कहते हैं कि:—

स्मितेन भावेन च लज्जया भिया, पराङ्मुखैरर्द्धकटाक्षवीक्षणैः।
वचोभिरीर्ष्याकलहेन लीलया, समस्तभावैः खलु बन्धनं स्त्रियः॥
(भर्तृहरि शृंगार शतक)

भावार्थ—सरल हास्य पूर्वक भाव जताना, लज्जा करना डरना, मुंह फेर कर खड़ी हो जाना और अधमुंदे नेत्रों से कटाक्ष पूर्वक देखना, वचन योजना, ईर्ष्या करना, कलह करना लीला करना इन सब क्रियाओं से स्त्रियाँ अपने बन्धन में पुरुषों को बाँध लेती हैं। फिर पुरुषों को अपनी इच्छानुसार नाच नचाती रहती हैं और बड़े बड़े चतुरों को पागल बना देती हैं। जिनमें पूर्ण विवेक होता है वे ही इस बलाय से बच सकते हैं।

नायिका को सौंप सातवें मंजिल की विभूति का एक बार उपभोग करूँ। कहा है:—

वेश्यासौ मदनज्वाला रूपेन्धनसमेधिता।
कामिभिर्यत्र हूयन्ते, यौवनानि धनानि च ॥
(भर्तृहरि शृङ्गार शतक)

भावार्थ—वेश्या रूप के ईन्धन से धधकती हुई कामाग्नि की प्रचण्ड ज्वाला है जिसमें कामी पुरुष अपना धन और यौवन का होम कर डालते हैं।

ऐसा निश्चय करके हंसराज अपने साथियों को कहने लगा मित्रों ! आपकी इच्छानुसार शहर की शोभा देखकर आप लोग उतारे पर पधारें मैं अभी यहीं ठहरूँगा। यह सुनकर हंसराज की मित्र मंडली उसके आन्तरिक भावों को समझकर वहां से चल दी और वे बाजार से आवश्यक वस्तुएँ खरीदकर पड़ाव की तरफ आने लगे।

हंसराज भी नायिका को कहने लगा कि मैं अभी ही पिता के पास जाकर उनसे पांच लाख की रकम सातवें मंजिल की फीस स्वरूप लाकर वापिस आता हूँ। यह कहकर वहाँ से डेरे की तरफ चल दिया।

बड़े २ शहरों में जितनी विलासी साधनों की प्रचुरता होती है मनुष्यों का पतन भी उतने ही प्रमाण में अधिक होता है आज भी बम्बई कलकत्ता देहली आदि भारत के मुख्य नगर हैं उनमें विलासी साधन भी बहुत हैं और अविवेकी मनुष्यों का पतन भी

यहां अधिक प्रमाण में होता है । नाटक, सिनेमा आदि का आविष्कार प्रारम्भ में चाहे अच्छे उद्देश्य से ही हुआ हो परन्तु उन से उचित शिक्षा ग्रहण करने वाले तो बहुत कम प्रमाण में मिलेंगे किन्तु इनके द्वारा ऐय्याशी, बदमाशी, छल, कपट आदि दुर्गुण ही अधिक प्रमाण में पल्ले पड़ते हैं । हंसराज के लिए भी यही हुआ है ।

प्रकरण ३ रा.

माता-पिता का स्नेह

हंसराज अपने पड़ाव में मात-पिता के पास उपस्थित हुआ और विनयपूर्वक नमस्कार कर कहने लगा—पूज्य पिताश्री आज एक नम्र विनति आपसे करना चाहता हूँ सो स्वीकार की जाय।

लाखी बनजारा, वात्सल्य पूर्वक कहने लगा 'प्रिय पुत्र, तुमसे अधिक प्रिय पदार्थ हमारे पास है ही क्या? तुझे जरूरत हो सो कह, वह तेरे स्वाधीन करें। हंसराज कहने लगा 'पिताजी, किसी आवश्यक कार्य वश मुझे पचीस हजार रूपये की जरूरत है सो देने की कृपा कीजिये।

पूर्व समय में आज की तरह सम्पत्ति के विभाजन नहीं होते थे पिता, पुत्र, पत्नी, पति के अलग २ संग्रह भंडार नहीं होते थे। यह भी किसी अपेक्षा अच्छा ही था इससे कुटुम्ब में संलग्नता बनी रहती थी। स्वच्छन्दता निरंकुशता को अवकाश ही नहीं मिलता था। कुटुम्ब की प्रत्येक घटना कुटुम्ब के नायक को ज्ञात हो जाती थी और वे भी अपनी तरह दूसरों की आवश्यकता को

समझते थे और बिना मांगे ही वे स्वयं पूरी कर देते थे। हमारे पुराने रीति रिवाज इनके मार्गभूत हैं, आज उनकी मर्यादाएं नष्ट कर पाँवतले उन्हें ठुकराया जाता है और स्वच्छन्दता में सुख माना जाता है। कोई किसी के अधीन रहना नहीं चाहता। इनका दुष्परिणाम अनुभव में आवेगा तब समझेंगे।

बनजारा अपने पुत्र से कहने लगा पुत्र ! तुझे ऐसा कौन सा व्यापार करना है जिसके लिए ऐसी बड़ी रकम चाहिये ?

जवाब में हंसराज एक वेश्या को देने का कहने में सकुचाया और मौन रहा। बणजारा बारम्बार पूछने लगा परन्तु पुत्र कोई जवाब नहीं देता है। पूर्व काल में बड़ों का अदब रखना आवश्यक माना जाता था, आज की तरह मुंहफट जवाब नहीं देते थे। बण-जारा के अत्यन्त आग्रह पूर्वक पूछने पर उसने सोचा कि बिना बताये रकम देंगे नहीं और बगैर रकम वहां पहुंच सकूंगा नहीं इसलिए लाचार हो कर कहने लगा—पिताजी इस शहर में एक लाखी गणिका रहती है उसके यहां अधिक से अधिक एक दिन रात की फीस पचीस हजार है। यह रकम दिये बिना मेरे दिल की मुराद पार पड़ती नहीं इसलिए यहां आया हूँ मेरा मन तो उसके यहां के सातवें मंजिल पर डोल रहा है केवल शरीर का खोखा ही आपके समीप उपस्थित हुआ है।

हंसराज के लिए यह पहला ही मौका है। यह पहले इस प्रकार की ऐय्यासी जानता ही न था न विलास प्रिय ही था बड़ा ही विनयवान शान्त मिजाज एवं नीतिज्ञ था किन्तु प्रकृति को जो कार्य जिसके द्वारा कराना होता है उसके लिये वह वैसे

ही साधन (निमित्त) खड़े करती है। मनुष्य उसकी कृतियों को नहीं जानता इसलिए बारम्बार आश्चर्यचकित होता है। कहा है:—

> तादृशा जायते बुद्धिर्व्यवसायोपि तादृशः ॥
> सहायास्तादृशो एव यादृशी भवितव्यता ॥ १ ॥
>
> —चाणक्य नीति

भावार्थ—वैसी ही बुद्धि उत्पन्न होती है वैसे ही संयोग बन जाते हैं और सहायक भी वैसे ही मिल जाते हैं जैसा भावी बनने वाला होता है। कहा है:—

> न निर्मितः केन न दृष्टपूर्वकः, न श्रूयते हेममयः कुरंगः
> तथापि तृष्णा रघुनन्दनस्य, विनाश काले विपरीतबुद्धिः।
>
> चाणक्य नीति

भावार्थ—न किसी ने बनाया न किसी ने पहले देखा न सुना कि सोने का मृग होता है किन्तु महापुरुष श्री रामचन्द्र जी भी सोने के मृग की माया जाल न समझ कर तृष्णा में उसे पकड़ने को पीछे पड़े तब सीताजी का हरण हुआ।

पिता कहता है कि हे पुत्र, ऐसी पापी प्रवृत्ति कराने वाले संसार का कुयोग मुझे कैसे हो गया? [illegible] मुझे कुछ भी [illegible] नहीं है [illegible] [illegible] तैयार है [illegible] [illegible] होता है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] जाता है [illegible] [illegible] [illegible] के यहां [illegible]

और उनसे सम्पर्क साधना भले आदमियों इज्जतदारों के लिए लाच्छन स्वरूप है ऐसी कुट्टनियों से बचना ही श्रेष्ठ है एवं उसी में क्षेम कुशल है।

> कश्चुम्बति कुलपुरुषो, वेश्याधरपल्लवं मनोज्ञमपि ॥
> चारभटचोरचेटक, नटविटनिष्ठीवनशरावम् ॥
>
> भर्तृहरि शृङ्गार शतक

भावार्थ—वेश्या का अधर पल्लव यदि अत्यधिक सुन्दर हो तो भी कौन कुलीन पुरुष उसे चुम्बन करे क्योंकि वह ठग ठाकुर और नीच नट-विट और जार पुरुषों के थूकने का ठीकरा है। प्रत्येक मनुष्य उससे नफरत करे ऐसी यह वेश्याएं होती हैं।

इत्यादि अनेक प्रकार का सद्बोध पिता ने दिया परन्तु जिसको तीव्र मोह का उदय होकर जो काम से परास्त हो जाता है उसे वह हितकर शिक्षा भी नहीं रुचती उल्टा उसे दूसरा ही खयाल होता है यही बात हंसराज के लिए भी हुई।

उसने सोचा इस तरह से तो पिताजी रकम देंगे नही और बगैर रकम दिये मेरा वहां जाना हो नही सकता। बिना वहां गये तथा सातवीं मंजिल पर रही हुई अद्भुतता देखे बिना मुझे चैन पड़ेगी नही इसलिए इस समय कुछ उपाय करना चाहिये यह सोचकर वह बोला—पूज्य पिताजी! आपका फरमाना ठीक है परन्तु मैं अब उसे टालने में असमर्थ हूँ यदि आपको रकम नही देना है तो जाने दीजिये मैं अब अपना धार्या करता हूँ मेरे अब तक के अपराधों को क्षमा करना यह मेरा अन्तिम प्रणाम है। कहने के साथ ही अपनी कमर में लटकती हुई कटार

निकाल कर अपनी छाती में भोंकने को तैयार हो गया। यह देख उसकी माता लक्ष्मी बाई (बनजारे की स्त्री) ने उसका हाथ पकड़ लिया और अपने पति से कहने लगी स्वामिन् ! आपने अपना कर्तव्य पालन कर लिया अब अधिक खींचा तान करने में कुशल नहीं है। इसकी अपेक्षा रकम ज्यादा नहीं है। आप जो करते हैं वह इसी के लिए है अतः रकम दे दीजिए अन्यथा अनर्थ कर बैठेगा।

पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों के स्वभाव में कोमलता विशेष होती है। तथा सन्तान के प्रति ममत्व भी अधिक रहता है। वे अपनी सन्तान के द्वारा होते हुए साहस को बरदास्त नहीं कर सकती इसलिए कोई २ बार इस सहृदयता का दुरुपयोग भी हो जाता है और वे ठगी भी जाती हैं।

बनजारा ने इच्छा न होते हुए भी रूपये पचीस हजार की थैलियें गणिका के यहां पोठियों पर पहुँचा दी। गणिका की नायिका ने रकम लेकर रसीद दी और युवक हंसराज के आने की प्रतीक्षा करने लगी।

पुत्र मोह भी ऐसी बलाय है कि वास्तविकता को जानते हुए भी कई भले नीतिवान मनुष्य अपने फरजन्दों को नरक के अनुगामी बनने में सहायक होते हैं ऐसे कट्टर तो बहुत कम होते हैं जो पुत्र मोह को गौण कर न्याय एवं सत्य को महत्व देते हों। जैन शासन में ऐसे मनुष्यों (सत्यधारियों की कमी नहीं है जिन्होंने पुत्रों का घात देखना तो सहन कर लिया परन्तु धर्म से विचलित नहीं हुए। श्री उपासक दशांग सूत्र इस बात की साक्षी पूरता है।
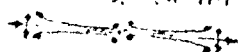
प्रकरण ४

वेश्या के भवन में माता का मिलाप
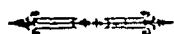
रुपये पच्चीस हजार विणजारा ने पोठियों पर लदाये उसी समय हंसराज भी अपने पड़ाव से विदा होकर गणिका के यहां उपस्थित हुआ। नायिका उसका अभिवादन करती हुई अन्दर प्रवेश करने का आमंत्रण करने लगी।

हंसराज पहले ही मंजिल में चढ़कर देखता है तो वह भवन जगमग जगमग प्रकाशमान हो रहा है। वहां रखे हुए एक पलंग पर बैठा कर नायिका ने अपने अधीनस्थ सर्व सुन्दरियों को आदेश दिया कि बहुत समय से आज सातवें मंजिल की फीस देने वाला यह भोगी भंवर अपना महमान हुआ है अतः इसका आदर सत्कार करके इसका मनोरंजन करो। आदेश पाते ही आस पास के कमरों में रही हुई शृङ्गार युक्त सुसज्जित सुन्दरियां हंसराज के पास आकर विविध प्रकार के कामोत्तेजक प्रयोग करने लगीं। यथाः

भ्रूचातुर्यात्कुञ्चिताक्षाः कटाक्षाः,
स्निग्धा वाचो लज्जितान्ताश्च हासाः।
लीलामन्दं प्रस्थितं च स्थितं च,
स्त्रीणामेतद्भूषणं चायुधं च ॥ १ ॥

—भर्तृहरि शृंगार शतक

भावार्थ— भौंहें पलटाने की चतुराई, आंखें कुछ मुंद-टेढ़ी नजर से कटाक्ष करना, स्निग्ध एवं मधुर वचन बोलना, लज्जा करना, फिर हंसना, मन्द मन्द गति से लीला करती हुई चलना और घूम कर खड़ी हो जाना यह स्त्रियों के स्वभाविक भूषण तथा कामी पुरुषों को वश में करने के आयुध (शस्त्र) भी हैं।

यह सब चेष्टाएं देखकर हंसराज विचार करता है कि स्वर्ग की विभूति को भुलावा दे ऐसी स्थिति तो यहीं है तब जहां की फीस मैंने भरी है वहां कैसी तय्यारी होगी अथवा क्या कमी है यह चल कर देखना चाहिये। अंग चेष्टा की जानकार नायिका कहने लगी हे—महापुरुष उठो और मेरे साथ सातवें मंजिल पर चलो। यह सुनते ही हंसराज वहां उपस्थित तरुणियों के तेज में जिसका मन अधीन नहीं हुआ है वह उठ कर ऊपर चढ़ने लगा। प्रत्येक माले में उसका इसी प्रकार स्वागत होने लगा और वहां की विशिष्ट सामग्री देख देख कर आश्चर्य पाता हुआ छठे मंजिल में पहुँचा वहां भी वैसा ही स्वागत और मनोरंजन हुआ किन्तु वहां भी न रुकते हुए जहां का चार्ज दिया है वहीं जाने की इच्छा ने उसे विवश किया। तब नायिका बोली हे भाग्य-शाली अब आप इस चढ़ाव से ऊपर सातवें मंजिल में जाकर चौबीस घंटे तक इच्छानुसार सुखोपभोग करिये और अपनी दी हुई फीस को सार्थक कीजिये यह कह कर नायिका वहां से चली गई।

सातवीं मंजिल की सीढियों पर चढते हुए हंसराज सोचता है कि इस मंजिल तक नयी नयी नव यौवना सुन्दरियों ने मुझको अपने प्रेम में फांसने के लिये पूर्ण प्रयत्न किया और कुशलता

…क मेरा मन मुग्ध किया परन्तु सर्वोपरि शोभा के स्थान रूप …तवें खण्ड की सुन्दरी जो मेरे स्वाधीन की गई है वह किस …यारी में लगी हुई है यह मुझे पहले गुप्त रूप से चलकर देखना …हिये । यह विचार करके अपने पांव की आवाज रोक कर …ीढ़ी पर से ही दृष्टि डालता है तो उसके नयनों को चकाचौंध …रे ऐसी सजावट व पलंग आदि देखा परन्तु वहां रही हुई सुन्दरी …क दम विचार मग्न और दीनता युक्त चेहरे से बैठी हुई दिखाई …ी । उसे शोक सागर में डूबी हुई एवं आंखों से अश्रुधार बहाती …ुई देख कर हंसराज आश्चर्य करने लगा और विचारने लगा कि यह क्या बात है ?

वह मंजिल में पहुँच कर पलंग पर बैठ गया । यद्यपि बाहर की शोभा और सजावट तो उस सुन्दरी की भी वैसी ही थी, वस्त्राभूषण वैसे ही बहुमूल्य थे जिससे कि आगन्तुक आकर्षित हो जाय परन्तु हृदय के भाव इसके विपरीत ही थे । वह सोच रही थी कि मेरे पूर्व कृत कर्मों ने मुझे यहां लाकर रखी फिर भी पाप में पुण्य के छांटे से बारह-वर्ष तो बीत गये और मैं अपने शील धर्म की रक्षा कर सकी, एवं अपने पूर्व दुखों को भूलसी गई थी परन्तु आज अनायास यह कैसी आफत आयी है । प्रभो ! अब मैं पराधीन बनी हुई आज मेरे शील धर्म रूपी रत्न की रक्षा कैसे कर सकूंगी । हे क्रूर दैव ! मेरे पापों ने मुझे कहां से कहां लाकर डालदी । कहां मेरे पति, कहां मेरे पुत्र, कहां मेरा घर और कहां मैं ? इत्यादि विचारों में मग्न बनी हुई निश्वास डालकर धूजने लगी और अनायास बोल उठी प्रभो ! अब तो समय आ पहुँचा है मुझे पवित्र स्थिति में ही देह त्याग करने में सहायक बनिये । कारण कि यह तरुण पुरुष सुर भवन से ही मेरी लाज लूटने को

[illegible]

"प्राणनाशे क्षणं दुःखं, शीलभंगे पुनः पुनः"

अर्थात् प्राण त्यागने में तो एक बार ही दुःख होता है परन्तु शील भंग का बारम्बार दुःख होता रहेगा।

आगन्तुक युवक उस सुन्दरी की यह हालत देखकर व उसके मुंह से निकले हुए भयोत्पादक शब्द सुनकर [illegible] उस सुन्दरी को सम्बोधन करके कहने लगा:—

अरी पाताल लोक की पद्मिनी के रूप को मात करने वाली तथा स्वर्ग लोक की अप्सराओं की प्रतिस्पर्धा करने वाली कोमलांगी कान्ता तेरे लिए ही मैंने चौवीस घण्टे के रुपये पच्चीस हजार दिये हैं और तीसरे मंजिल की उन अप्सराओं के आग्रह पूर्ण आमंत्रण को ठुकराकर मैं यहां तेरे पास आया हूँ, किन्तु अफसोस है कि तुम्हारी तरफ से मुझे उचित आदर सत्कार जितना भी सुख नहीं मिला यह कितनी अनुचित बात है? क्या मेरे दिये हुए पच्चीस हजार रुपये व्यर्थ ही जावेंगे। तेरा रूप तो मेरे हृदय में प्रेमोत्पत्ति करता है किन्तु तुझे ऐसा कौनसा दुःख पीड़ा दे रहा है जिससे तेरी यह स्थिति हो रही है। इस समय मेरा दिल जिस प्रकार निरंकुश-मदोन्मत्त हाथी महावत के काबू से बाहर होकर उत्पात करता है उस तरह मदन के आवेग से विकल बन रहा है अतः अब देरी न कर।

सती ने अपने ऊपर गुजरे हुए सितम का पूर्ण बयान करने जितना समय न होने से संक्षेप में ही कहा कि हे वीर मैं गणिका नहीं किन्तु कुलीन कान्ता हूँ शील संरक्षण के खातिर

पहले भी मैंने अनेकों संकट सहे हैं और अब भी सहने को तैयार हूँ। मेरे दुर्दैव ने मुझे यहां लाकर रखी है फिर भी मैं तो संसार के सभी पुरुषों को बन्धु भावों से ही देखती हूँ। मैंने यहां तक निश्चय कर रखा है कि चाहे मुझ पर दुःख के पहाड़ आकर गिरें तो वह सह लेना, देह त्याग देना किन्तु शील धर्म का त्याग करके, पर पुरुष का सेवन नहीं करना।

इस प्रकार अपने शील धर्म की रक्षा के खातिर उस सती ने बहुत कहा परन्तु जिसने एक दिन के पच्चीस हजार रुपय नायिका को दिये हैं वह कब माने ? उसने सती के कहने पर कुछ भी खयाल न करते हुए उसे अपने प्रेम पाश में जकड़ने के लिए पर्यंक पर से उठ कर उस सती का हाथ पकड़ अपने पास लाने को खड़ी की। उसी समय दोनों की चौनजर होते ही एक अजीब घटना घटी।

जिस प्रकार भगवान् महावीर को देखते ही देवानन्दा के हृदय में पुत्र प्रेम जागृत होकर उसका वदन स्फुरायमान हो गया था रोमराजि विकसित हो गई थी और दोनों स्तनों से दूध की धारा छूटी थी जिसका वर्णन श्री भगवती सूत्र के ९ वें शतक उद्देशक ३३ में है उसी प्रकार इस सती को भी पुत्र का वियोग हुए तेरह वर्ष करीब हो गये थे और स्तनों में दूध भी सूख गया था, वह पुत्र का कर स्पर्श होते ही सती के शरीर में यकायक बिजली का सा परिवर्तन हो गया। शरीर हर्षोन्मत्त होकर दोनों पयोधरों से दूध की धारा निकल आयी और पहना हुआ बहुमूल्य कञ्चुक गीला हो गया।
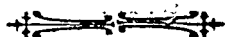
प्रकरण ५

संस्कारों का प्राबल्य
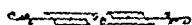
एक क्षण पहले जिसके प्रति घृणा हो रही थी और आंख उठा कर सामने देखना भी नहीं चाहती थी, हृदय में तिरस्कार भरा हुआ था, दृष्टि मिलाप होते ही हृदय में मातृप्रेम का वेग उमड़ आया। यद्यपि यह सती भी यह नहीं जानती है कि यह अंगजात पुत्र है फिर भी पूर्व संस्कार अपना काम करते हैं।

सती उस पुरुष को अब टकटकी लगा कर देखने लगी और उसके हृदय में शान्ति का झरना झरने लगा। जिस प्रकार एक सिद्ध पुरुष मेस्मेरिजम के प्रयोग से अपनी भावना सामने वाले मनुष्य में प्रवेश करके उससे अपना अर्थ सिद्ध करता है उसी प्रकार इस सती की पवित्र दृष्टि उस कामी पुरुष पर पड़ते ही उसकी विकारी मलिन भावना भी नष्ट हो गई और उसने सती का पकड़ा हुआ हाथ छोड़ दिया और उसके दुखित हृदय की गहरी वेदना सुनने को उत्सुक बन गया। यद्यपि हंसराज ने तो इस सती का हाथ विकारी भावना से ही पकड़ा था परन्तु न जाने माता और पुत्र के शरीर का ऐसा क्या सम्बन्ध है जो अकस्मात यह परिवर्तन हो गया।

बिजली के बटन दबाने से जिस प्रकार रोशनी प्रकट हो जाती है इसी तरह इस विदेशी पुरुष को देखकर सती के हृदय में भी स्वाभाविक आत्मीयता प्रकट हो गयी। वह सोचने लगी कि मेरे हृदय में इस प्रकार परिवर्तन करने वाला यह कौन पुरुष है जिसका हस्त स्पर्श होते ही मेरे स्तनों में शुष्क बना हुआ दूध प्रकट हो गया और मेरे हृदय में मातृ वात्सल्य उमड़ पड़ता है इस पुरुष के साथ मेरा कौन सा निकट सम्बन्ध है इससे पूछ कर तो देखूं।

सती हंसराज से पूछती है—हे सज्जन ! तुम कहां रहते हो तुम्हारे माता पिता कौन हैं और तुम्हारा क्या नाम है, तुम कहां से आये हो ? उत्तर में हंसराज कहता है कि हे सुन्दरी मैं मरुधर देश का रहने वाला हूं। लाखा बणजारा मेरे पिता हैं लक्ष्मी बाई मेरी माता है। मेरे माता-पिता व्यापारार्थ बारद लेकर पोठियों पर माल लाद के देशाटन करते हैं उनके साथ मैं भी भ्रमण करता हूं। मेरे माता पिता इस शहर के बाहर बारद का पड़ाव देकर रहे हुए हैं। मैं अपने मित्रों सहित शहर का निरीक्षण करने निकला था। संयोग वश यहां आ पहुँचा। हवेली की नायिका ने तुम्हारी तारीफ की इससे आकर्षित होकर यहां आया हूँ। इसके सिवाय मैं कुछ भी नहीं जानता हूं।

सती कहने लगी कि आपका कथन सत्य है फिर भी आपको कर स्पर्श होते ही मेरे हृदय में व बाहर जो परिवर्तन हुआ है इससे ज्ञात होता है कि आपके साथ मेरा कोई पूर्व परिचय है। इसलिये मैं आपकी पूर्व स्थिति विशेष रूप से जानना चाहती हूँ तो कृपया एक बार आपके माता पिता के पास जाकर

और आपके बाल्यकाल की घटना माता-पिता से पूछकर मुझे सुनावें तो मैं आपकी बहुत अहसानमन्द रहूँगी। मेरे पुत्र को मुझ से बिछुड़े करीब इतना ही समय हुआ है इससे मेरे हृदय में यह उत्सुकता है अत कृपा करके मेरे दिल का समाधान करने के लिये आप अपना वृत्तान्त पूछ आवें।

इस प्रकार के सती के मृदु और कोमल वचन सुनकर हंसराज सोचने लगा कि यह युवती यदि इससे सन्तुष्ट हो जाय तो ऐसा करने में मुझे क्या हानि है ? यह विचार कर हंसराज कहने लगा—हे कोमलांगी, धैर्य धरो मैं अभी माता पिता से पूछ आता हूं। यह कहकर वह भवन से नीचे उतरा और अपने पड़ाव में उपस्थित हुआ। स्वल्प समय में ही हंसराज को वापस आया देखकर वणजारा को यह शंका हुई कि ऐसी कौन सी वस्तु की इसे जरूरत पड़ी जिससे इसे पीछा आना पड़ा।

दोनों दम्पति यह तर्क करते थे इतने में हंसराज माता-पिता के पास आकर विनय पूर्वक पूछने लगा कि हे माता पिता ! मैं किसका पुत्र हूँ और मेरी पूर्व स्थिति यानी बाल्यकाल की कोई विशेष घटना है ? यदि हो तो यथावस्थित प्रकट कीजिये।

वाचक को यहाँ यह शंका होना स्वाभाविक है कि दूध का पाना बढ़ने आदि के द्वारा उस रानी को तो अपना अंगज होने का वितर्क हो सकता है परन्तु हंसराज को माता-पिता के सामने ऐसा प्रश्न करने का क्या कारण है ? इसके लिये यही कहा जा सकता है कि हंसराज को भी उत्सुकता पैदा हो गई कि जो मैंने एक बार पहले सामने भी नहीं देखी थी वह निर्भय

होकर बात करने लगी और उसका हाथ पकड़ते ही उसकी भी विकार भावना बदल गई जिससे इसे भी विचार हुआ कि यह क्या बात है। पूर्व संस्कार भी अपना कार्य कराते ही हैं। प्रत्यक्ष न जानने पर भी बुद्धिमान अनुमान पर से विचार कर सकता है।

पुत्र के द्वारा यह प्रश्न सुनकर बनजारा और उसकी स्त्री असमंजस में पड़ गये कि इसे पूर्व की बात किसने बता दी जो आज पुत्र इस प्रकार प्रश्न करता है। इसे क्या उत्तर देना चाहिये इस प्रकार शंकाशील चेहरे से कुछ विलम्ब करके वे उत्तर देने लगे—प्रिय पुत्र ! तेरे जैसे विचक्षण और बुद्धिमान को इस प्रकार की (बालक जैसी) शंका कैसे हुई और यह बात पूछने का साहस ही क्यों पैदा हुआ। तू हमारा एक मात्र ही पुत्र है और हमें प्राण से भी प्यारा है। यह सब तेरा ही है। ऐसी बातें जाने दे। क्या मतलब है ऐसी बातें पूछने से ? विलम्ब से और फिर भी टालमटोल का उत्तर मिला इससे हंसराज को भी भ्रम हुआ कि कुछ रहस्य अवश्य होना चाहिये अन्यथा इन्हें विचार में पड़ने की क्या आवश्यकता थी और सुनते ही ये स्तब्ध क्यों बन गये ? अब तो सच्ची हकीकत जाननी ही चाहिये। बुद्धिमान और विलक्षण मनुष्य इस प्रकार चेष्टा एवं बोलने की पद्धति से विषय की वास्तविकता को समझ जाते हैं यह मतिज्ञान के क्षयोपशम की विचित्रता है। एक मनुष्य इशारे से समझ जाता है दूसरा पूरी बात समझाने पर भी नहीं समझता है और उसे उल्टी तानता है। यही कर्म सिद्धान्त की सिद्धि है।
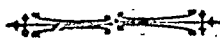
प्रकरण ६ ठा.

वास्तविकता पर प्रकाश
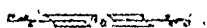
ज्यों २ माता पिता की तरफ से सच्ची बात प्रकट होने में विलम्ब तथा आनाकानी होने लगी त्यों २ हंसराज की अधिकाधिक उत्सुकता बढ़ती गई और वह आग्रह करता जाता था। जब उसके मन का समाधान होता न दिखाई दिया तब कमर में लटकती हुई कटार खींचकर अपनी छाती में भौंकने को तैयार हुआ। यह दुःसाहस देखकर आसपास के मनुष्यों ने उसका हाथ पकड़ लिया और समझाने लगे कि आपको इस प्रकार का दुःसाहस करना उचित नहीं है।

माता पिता ने भी सोचा कि अब असली बात छिपाने से कोई लाभ नहीं है। सत्य हकीकत कह देना ही उचित है। यह विचार कर वे कहने लगे—पुत्र! आज से तेरह वर्ष पूर्व हम मारवाड़ छोड़कर व्यापारार्थ निकले थे और विदेश यात्रा कर रहे थे उस समय जो रास्ता अब आने वाला है वहां जंगल में एक वट वृक्ष के नीचे भूमि पर एक श्वेत रंग का कपड़ा बिछा हुआ था उस पर सोया हुआ तू हमें मिला। उस समय तेरी

ायु करीब दो वर्ष की होगी । पास में कोई भी नहीं था । अरण्य-मि में माता पिता रहित आक्रन्द करते हुए तुझे देखकर हमें या आई और हमने वहां से ऊठा लिया । ऐसे भयानक जंगल देवकुमार जैसा पुत्र छोड़ कर जिसने तुझे जन्म दिया है वह ाता कहां चली गई होगी और उस माता पर न मालूम कौन ा विपत्ति का पहाड़ आ गिरा होगा कि तेरे जैसे रत्न को उस यानक जंगल में दिन के समय त्याग करना पड़ा होगा यह शंका में भी बहुत बार होती रहती है परन्तु तेरे आगे हमने कभी कट नहीं की और न करने का कारण ही था । यह असलीयत कट करने का पहला प्रसंग है । हम तो तेरे रक्षक माता पिता हैं चे जन्म देने वाले नहीं फिर भी तू हमें प्राणों से प्यारा है । हमने आज तक जन्म जात पुत्र की तरह ही तेरा रक्षण व पोषण किया है और यह सब सम्पत्ति तेरी है । तू किसी तरह ख्याल न करना । हमारा तू ही आधार है ।

रक्षक माता-पिता के द्वारा यह बात सुन कर साश्चर्य घने हुए हंसराज की विचार-धारा किसी दूसरे ही रूप में बदल गई और वह अपने माता-पिता को उसी पूज्य बुद्धि से नमन करता हुआ उनका आभार मान कर वहां से चल दिया ।

नगरी के द्वार पर पहुँच कर शहर में प्रवेश करते ही उसे कुछ अपशकुन हुए परन्तु उसका इस तरफ लक्ष्य ही नहीं था उसका लक्ष्य तो सातवें मंजिल में रही हुई दुखी तरुणी को अपनी पूर्व स्थिति बता कर रहस्य जानने को उत्सुक था । शीघ्र ही गणिका के भवन में आकर सीधा सातवें माले पहुँचा । सीढ़ी

खड़ी हुई और सत्कार पूर्वक आसन पर बैठने का आमंत्रण करने लगी। पलंग पर बैठकर कुछ समय विश्राम लेने के अनन्तर सती कहने लगी कि हे महाभाग! आपने मेरे लिए जो कष्ट उठाए हैं उसके लिए मैं आपकी कृतज्ञा हूँ। अब यह बताइये कि आपको वहां कोई नवीन बात जानने को मिली? कृपा करके बताइए ताकि मेरे मन का समाधान हो।

हंसराज कहने लगा कि हे सती आपकी शंका ने तो मुझे आज कोई नया ही अनुभव कराया है अब तक जिनको मैं अपने जन्म देने वाले माता-पिता मानता था आपकी प्रेरणा से पूछने पर वे तो मात्र मेरे रक्षक और पोषक माता-पिता ही हैं मेरी रक्षा और पोषण करने जितना ही हक धराते हैं किन्तु जन्म देने वाले मातपिता कौन होंगे यह तो वे भी नहीं जानते। उन्होंने मुझे इतना ही बताया है कि आज से तेरह वर्ष पूर्व हम जब देशाटन को थे और व्यापारार्थ माल लेकर जा रहे थे उस समय एक भयानक जंगल में एक वट वृक्ष के नीचे किसी कम्बल पर लेटा हुआ निराधार स्थिति में मुझे पाया उस समय मेरे पास कोई भी नहीं था। मेरी आयु उस समय करीब दो वर्ष की थी। उन्होंने आस पास किसी को न देख कर मुझे उठा लिया।

यह बात जानने पर मुझे भी मेरी स्थिति के विषय में बड़ी शंकाएं हो रही हैं कि मेरे माता-पिता ने किस कारण से मुझे इस स्थिति में [illegible] छोड़ा होगा और उनकी क्या दशा हुई होगी।

[illegible] समस्या [illegible] हमारी ही [illegible] है किन्तु [illegible] यह [illegible] हुई है कि यदि

शान्ति पूर्वक अपनी बुद्धि एवं विचार शक्ति का सदुपयोग करे और प्रयत्न करे तो वह वास्तविकता को प्राप्त कर सकता है। चाहिये हार्दिक जिज्ञासा। आत्मा ही आत्मा का साक्षी है। यदि अपनी आत्मा को शुद्ध बना ले तो विपरीत वृत्ति वाला प्रतिपक्षी विपरीतता त्याग कर शत्रु से मित्र, दुष्ट से सज्जन और विकारी भी निर्विकार बन जाता है।

हंसराज के द्वारा उसकी पूर्व स्थिति सुनते ही उस सती के समक्ष वह पूर्व घटना सब ताजा खड़ी हो गई और जिस स्थिति में उसने पुत्र को छोड़ा था वह सुनकर उसका हृदय भर आया। उभय नेत्रों से अश्रुधारा बह चली। बड़ी कठिनता से हृदय को थामकर गद्गद् स्वर से कहने लगी—

हे प्रिय पुत्र! पूर्व कृत कर्मों ने तो मेरे ऊपर दुखों की हद पूरी कर दी। तू ने मेरे ही उदर से उत्पन्न होकर दो वर्षों तक मेरे ही इन स्तनों का पय पान किया परन्तु दुर्दैवने तुझको भी मुझ से दूर किया जिसको आज तेरह वर्ष बीत चुके। मैं निरन्तर रात दिवस तेरा ही स्मरण चिन्तन करती थी और समय बिताती थी क्योंकि पतिदेव तो अब इस संसार में रहे नहीं, मुझे निराधार स्थिति में छोड़कर चल बसे। केवल तेरी ही आशा से जीवित थी किन्तु तू अपनी दुखियारी माता को ऐसा अनिष्ट प्रसंग लेकर मिला कि वह याद आते ही हृदय चिरा जाता है। अच्छा होता कि ऐसा प्रसंग आने से पहले ही मेरी मृत्यु हो जाती तो मैं अपने को भाग्यशाली मानती। इस प्रकार अपने पूर्व कर्मों को दोष देती बिलखती उस स्त्री को देखकर खेदातुर बना हुआ हंसराज कहने लगा कि आपसे मेरा यह दृष्टि मिलाप भी जिन्दगी में पहली बार

ही हुआ है इससे पहले न तो आपको मैंने पहले कभी देखा
न आपने ही मुझे देखा होगा फिर मुझे किस आधार से पु
सम्बोधन से बार २ पुकारती हो, समझ में नही आता। यदि
पवित्र रहने की इच्छा से मुझे पुत्र कहती हो तो अब मुझ से
खाने की जरूरत नही मैं तुम्हें सच्चे हृदय से विश्वास दिलाता
कि अब मुझ से जरा भी भय न रखो। जब से तुम्हारी ओर से
दृष्टि मिली है तब से मेरे हृदय में से भी वह बुरी भावना नि
गई है। मैंने उन विकारी विचारों को त्याग दिये हैं परन्तु मुझे
आश्चर्य हो रहा है कि मुझे जन्म देने वाली माता का दावा
किस आधार से करती हो? मेरी माता इस वेश्या घर में कैसे? या
जिस प्रकार आपने मेरी स्थिति जानने की चेष्टा की उसी प्रकार
मुझे भी आपकी पूर्व स्थिति बताने की कृपा करोगी कि जिससे मैं
यह समझ सकूं कि मैं किस प्रकार आपका जन्म जात पुत्र हूँ
और आपने किस कारण से वेश्यागृह में प्रवेश करके अपने शील
धर्म की रक्षा की जैसा कि आपने पूर्व में कहा है।

पुत्र का प्रश्न सुनकर रानी ने पश्चाताप से पिघलते हुए [illegible]
[illegible] इस प्रकार प्रारम्भ किया

यह तो टीड़ा भट्ट की अनर्गल भाषा भी उसके भाग्य की प्रबलता से सिद्ध हुई उसी तरह अपने भाग्योदय से ही यह पुत्र हुआ है जिसका पालन खूब संभाल पूर्वक सावधानी के साथ करो किसी प्रकार का वहम नहीं करो और सुख पूर्वक रहो।

से पूर्ण होकर तेरा जन्म मेरी कुक्षि से हुआ । शक्त्यनुसार जन्म की ख़ुशी मनाई गई, कुटुम्ब का मिष्टान्न तथा वस्त्रादि यथा योग्य सत्कार किया गया और "देवदत्त" तेरा शुभ न रक्खा गया।

कुछ समय बीतने पर मैंने तेरे पिताजी को कहा—स्वामि मैंने इस पुत्र के लिए अम्बिका माता की बोलमा की थी कि अम्बिके तेरी कृपा से यदि मुझे सन्तान लाभ होगा तो मैं प सहित पुत्र को लेकर पैदल यात्रा द्वारा तेरे दर्शन कराऊंगी" इ लिए आप पधार कर मेरी यह बोलमा पूर्ण करो और पुत्र अम्बिका माता के दर्शन कराओ।

तेरे पिताजी कहने लगे हे प्रिये! अम्बिका माता के पा क्या पुत्र रखा हुआ था सो उसने हमें दे दिया? हमारे भाग्य न हो तो चाहे कितनी बोलमा क्यों न की जाय नहीं हो सकत इसलिये यह न समझना चाहिये कि अम्बिका माता ने पुत्र दि है। भाग्य में न हो तो गर्भ में आकर भी उसका परिवर्तन हो जाता है।

श्रीकृष्ण की माता देवकी देवी के गर्भ में श्रीकृष्ण से पूर्व एक दो नहीं परन्तु छः छः पुत्र गर्भ में आये और वे भी ऐसे भाग्य शाली कि उनकी समता उस समय दूसरा कोई नहीं कर सकता था चरमशरीरी तद्भव मोक्षगामी थे परंतु उसके भाग्य में संतान सुख नहीं था इसलिये जन्मते ही उनका देवद्वारा अपहरण होकर जिस माता के भाग्य में सन्तान सुख था उसके यहां पहुंच गये श्री कृष्ण को भी जन्मते ही गोकुल में भेज गये इसलिये ऐसी बात नहीं है कि अम्बिका ने ही पुत्र दिया।

यह तो टीड़ा भट्ट की अनर्गल भाषा भी उसके भाग्य की प्रबलता से सिद्ध हुई उसी तरह अपने भाग्योदय से ही यह पुत्र हुआ है जिसका पालन खूब संभाल पूर्वक सावधानी के साथ करो किसी प्रकार का वहम नहीं करो और सुख पूर्वक रहो ।

प्रकरण ८

टीडा भट्ट की माया सिद्धि

एक गांव में एक दरिद्र ब्राह्मण रहता था। वह पुरुषार्थ न करते हुए केवल भिक्षा वृत्ति द्वारा ही अपना जीवन निर्वाह करता था और जीवन को आलस्यमय बना रखा था। एक समय उस ब्राह्मण की स्त्री सगर्भा हुई तब विचार करने लगी कि सन्तान होने पर तो खान पान आदि जापे में पैसे की आवश्यकता होती है बगैर पैसे काम नहीं चलता इसलिये अभी से कुछ प्रयत्न करना चाहिये। यह विचार कर वह एक दिन अपने पति ब्राह्मण देव से कहने लगी कि मैं सगर्भा हुई हूँ प्रसव समय निकट आता जा रहा है घर में पैसा नहीं है अत कहीं जाकर पैसा लाइये बिना पैसे काम नहीं चलेगा। श्रीमतीजी का आदेश सुनकर ब्राह्मण विचार करने लगा कि न तो मैं पढ़ा लिखा हूँ न कुछ जानता ही हूँ मैं कहां से पैसा लाऊँ मुझे कौन पैसा दे। परंतु ब्राह्मणी के बार २ तंग करने से ब्राह्मण ने निरुपाय जाना स्वीकार किया। ब्राह्मण के कुलाचारानुसार तिलक छापे लगा कर वहां से चल दिया। कहा है कि:—

उद्योगेन हि सिद्ध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः ॥
न हि सुप्तस्य सिंहस्य; प्रविशन्ति मुखे मृगाः ॥ १ ॥

भावार्थ—उद्योग से ही कार्य की सिद्धि होती है केवल मनोरथ करते रहने से नहीं। जैसे सोये हुए सिंह के मुंह में आकर मृग नहीं गिर पड़ता उसे उचित रूप से उद्योग करना ही पड़ता है तभी क्षुधा दूर होती है। इसी तरह आलसी मनुष्य का कोई कार्य सफल नहीं होता। उद्योग से सब कार्य सिद्ध होते हैं।

जाते हुए ब्राह्मण को भाग्य योग से मार्ग में तालाब की पाल के नीचे कुछ गधे चरते हुए दिखाई दिये। आगे जाने पर एक कुम्हार अपने गधों की शोध में आता हुआ दिखाई दिया नजदीक आने पर उसने पूछा गुरुजी ! मेरे गधे गुम गये हैं। मैं शोधते शोधते हैरान हो गया हूँ मेरे गधे मुझे कहां और कब तक मिलेंगे ? ब्राह्मण देव ने मीन मेष गिन कर कहा तेरे गधे इस तालाब की पाल के नीचे मिलेंगे। दुनिया में आडम्बर भी कभी २ कार्य साधक बन जाता है। पंडितजी को प्रणाम करके वह उतावला उतावला तालाब के पास पहुंचा निगाह फैला कर देखता है तो पाल के नीचे गधे चरते हुए दिखायी दिये। प्रजापति ने सोचा कि पंडितजी साक्षात् ब्रह्म है मैं ढूंढते ढूढते थक गया तो भी नहीं मिले और पंडितजी के दर्शन होते ही मिल गये इसलिए पंडितजी का मुझे स्वागत एवं भाव भक्ति करनी चाहिये। यह सोचकर गधों को घेर के शीघ्र ही मार्ग काटते हुए पंडितजी के आगे आकर कहने लगा महाराज आज मेरा घर पावन कीजिये। आप बड़े ज्ञानी हैं। ब्राह्मण ने सोचा कि मुझे भी भूख लग रही है दिन बहुत चढ़ गया है घर से तो कुछ लाया नहीं फिर भाग्यवश आमंत्रण मिल रहा है इसे क्यों टालूं ? वह प्रजापति के साथ हो लिया। कुम्हार पंडितजी को साथ लिये अपने घर आया और बाहर के

दालान में उन्हें आदर पूर्वक बिठलाये । घर में जाकर अपनी स्त्री से कहने लगा आज पंडितजी महाराज पधारे हैं बड़े ज्ञानी हैं अतः इनके लिये भोजन बनाओ कहकर बाहर चला गया । कुम्हारिन ने रोटे बनाये किन्तु उसने विचार किया कि मैं भी तो देखूं पंडितजी कैसे ज्ञानी हैं ? कुम्हारिन पंडितजी के पास आकर प्रणाम करके बोली महाराज आप बड़े ज्ञानी हैं तब कहिये मैंने कितने रोटे बनाये है ? पंडितजी ने उत्तर दिया तेने पांच रोटे और एक बाटिया बनाया है । कुम्हारिन आश्चर्य से कहने लगी पंडितजी वास्तव में ज्ञानी हैं जिन्होंने सच्ची बात बता दी रोटे तो बताये पर बाटिया भी बता दिया यही तो इनकी विशेषता है । कुम्हारिन ने प्रसन्न होकर ब्राह्मण को भोजन कराया ।

छोटा गांव होने से पंडितजी की प्रशंसा फैलते हुए देरी नहीं लगी। यह बात ठाकुर की गढ़ी में भी पहुँच गई उस समय ठाकुर साहब के रणवास में से ठकुरानी का हार चोरी में चला गया था इसलिए ठाकुर साहब ने सोचा कि पंडितजी को बुला कर पूछना चाहिये । पंडितजी को ठाकुर साहब ने बुलवाया प्रणाम कर ठाकुर साहब कहने लगे महाराज मेरा कीमती हार रणवास में से चला गया है आप बड़े ज्ञानी हैं बतलाइये वह किसने लिया ? पंडितजी असमंजस में पड़ गये वे क्या बतावें किन्तु ठाकुर साहब कब मानने लगे ? नौकरों को हुक्म दिया ये यों नहीं बतायेंगे इन्हें आज रात भर अमुक कमरे में बन्द कर दो । बेचारे ब्राह्मण के देवता कूच कर गये उसकी नींद हराम हो गई वह बन्द कमरे में बैठा हुआ रह रह कर कहता है "नींदड़ली हार गया" "नींदड़ली हार गया" उसी समय उस ठाकुर की एक

ी जिसने वह हार चुराया था वहां आयी और कान देकर
ने लगी। पंडितजी को नींद न आने से कोई कोई वार उपरोक्त
द बोल जाते।

पंडितजी का वह शब्द सुनते ही वह घबरायी कारण कि
का नाम भी इसी तरह का था। उसने सोचा पंडिजी तो बड़े
नी हैं सुबह ही ठाकुर साहब को कह देंगे तो मेरी क्या दशा
गी? वह वहां से जाकर गुपचुप हार लाकर उगालदान में से
रे में डाल गयी। पंडितजी के पास हार आकर पड़ा यह देख
ण प्रसन्न हुआ खूंटी तान कर सो गया, ऐसे खर्राटे भरने
ा कि सवेरा हो गया। उधर ठाकुर साहब ने प्रातःकाल होते
कमरा खुलवाया। ब्राह्मण जगकर हार लेकर ठाकुर के पास
ाया। हार देखकर ठाकुर बहुत प्रसन्न हुआ उसे उचित पुरस्कार
र वहीं रखा। अब तो ब्राह्मदेव ठाकुर साहब के महमान होकर
ने लगे। एक दिन ठाकुर साहब फिर हाथ में टीड़ी जानवर
र ब्राह्मण से पूछने लगे कहिये पंडितजी मेरे हाथ में क्या है?
तो पंडितजी घबराये सहसा उसने एक दोहा बनाकर कहा।

ाल चरन्ता गधा पाया, थापाथोपी रोटा ॥
ींदडली तो हार बतायो, अबतो टीडिया की मौत आयी॥

पंडिजी ने तो सहज भाव से वह दोहा कहा परन्तु भाग्य
ा से वह भी लागू पड़ गया ठाकुर साहब ने हाथ खोल कर
ी दिखादी इस प्रकार जब भाग्य अनुकूल होता है तो सभी
ें अनुकूल हो जाती है। कवि ठीक ही कहता है कि:—

नहीं सिर्फ पश्चात्ताप ही उसके लिए अवशेष रह जाता है। कवि ठीक ही कहता है कि "नाभाव्यं भवतीह कर्मवशतो भाव्यस्य नाशः कुतः" अर्थात् जो नहीं बनने वाला है वह प्रयत्न करने से बन नहीं सकता और जो बनने वाला है उसका नाश कैसे हो सकता है वह बन कर ही रहेगा फिर भी मनुष्य के लिये उचित यह है कि प्रत्येक कार्य सोच समझ कर करे।

प्रकरण ९ वां

मुसीबत का पहाड़
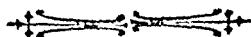
ग्रीष्म ऋतु में प्रातः काल का समय बड़ा ही सुहावना होता है। उस समय चलती हुई ठण्डी ठण्डी हवा पथिकों को प्रमोद एवं उल्लास देती है, उनमें उत्साह का संचार करती है परन्तु वह आनन्द और वह उल्लास अधिक समय तक टिकता नहीं। सूर्योदय होने पर उसकी तेजी बढ़ी कि वह सुन्दर ठण्डक लुप्त हो जाती है उसकी जगह गरम गरम हवा की लपटें प्रारम्भ होने लग जाती हैं और घबराहट पैदा कर देती हैं।

वत्स ! तेरे पिताजी के साथ तुझे लिये हुए मैं चली जा रही थी। ज्यों २ सूर्य की तेजी बढ़ती गई त्यों ही प्यास व घबराहट भी बढ़ती जाने लगी मुंह का थूक भी सूखता जा रहा था रास्ते के थाक में ग्लानि बढ़कर चेहरा म्लान बनता जा रहा था फिर भी होश के मारे चले जा रहे थे। चलते २ एक पगडण्डी दिखायी दी जो नजदीक का रास्ता समझ कर हम उस तरफ आगे बढ़ गये परन्तु थोड़ी दूर जाने पर झाड़ आदि वृक्षावली भी दिखाई नहीं दी और मार्ग विषम बन गया। घबराहट और बढ़ी, प्यास भी जोर से लगी तब मुझ से न रहा गया और मैं, कहने लगी—नाथ

अब मैं क्या करूं ? कहीं गये गगन भी गहन हो गया है न मालूम उनकी क्या हालत हुई होगी ? मैं कहां जाऊं और कहां शोधूं ? यह भयानक जंगल है यदि कोई भयानक जंगली जानवर आगया तो मेरी और इस बालक की रक्षा कैसी करूंगी यदि कोई दुर्जन दुष्ट तस्कर या व्यभिचारी मनुष्य आ गया तो मेरे इस दिव्य रूपधारी शरीर को कहां छिपाऊंगी तथा मेरे शील धर्म की रक्षा कैसे करूंगी ? इस प्रकार हे पुत्र मैं अपनी मूर्खतावश पश्चाताप कर रही थी ।

किसी काम को बिना विचारे कर लेना या मान्यता बोलमा कर लेना सरल बात है परन्तु जब उसके अनुसार प्रवृति करनी पड़ती है तब अनुभव होता है कि मैंने बहुत बुरा किया । मैं भी पश्चाताप कर रही थी और यह आशा लगाये बैठी हुई थी कि पतिदेव जल लेकर आते होंगे इतने में उत्तर दिशा तरफ धूल के गोट के गोट उड़ते दिखाई दिये ।

प्रकरण १० वाँ

मलिन—भावना

गुरु ! मैं जंगल में बरगद के नीचे अकेली बैठी हुई अनेक प्रकार के विचारों में गोते लगा रही थी इस समय मैं उत्तर दिशा तरफ धूल के गोटे उड़ते हुए देखकर विस्मित हो उठी और विचार करने लगी कि क्या बात है कौन आ रहा है । स्वल्प समय में ही एक घोड़ा पूरपाट दौड़ता हुआ सवार दिखाई दिया और वह भी उस वृक्ष के नीचे आकर विश्रान्ति लेने लगा मैं एक अनजान मनुष्य को देखकर घबराई । मुझे घबराती हुई असमंजस में पड़ी हुई अकेली देखकर वह घुड़सवार कहने लगा कि मैं यहां से नजदीक में रही हुई चन्द्रावती का राजा हूं शिकारार्थ परिवार सहित जंगल में आया था वह कार्य करके वापिस अपने शहर को जा रहा था । मेरा साथी लश्कर दूसरे रास्ते होकर निकल गया मैं इस रास्ते निकल आया । [illegible] हुए राजा ने मुझे देखी मेरे साथ में उस समय कोई नहीं था इसलिये [illegible] और शरीर की सुन्दरता ने उसके हृदय [illegible] ति पैद [illegible] के वेग में परवश होकर मर्यादा को [illegible] हुआ [illegible] ।—

अय कोमलांगी बाला तू साक्षात् इन्द्राणी जैसी रूप पुंज और हृदय को लुभाने वाली इस भयंकर जंगल में अकेली क्यों बैठी है ? तू मानुषी है या वनदेवी है तेरा आरक्षक कौन है सो कह और मुझ से मत घबरा । मैं यहां से नजदीक रही हुई चन्द्रावती का राजा हूँ । तूं मेरे साथ चल । मैं तुझे बड़े प्रेम से रखूंगा और सब रानियों में पटरानी बना कर तेरा सम्मान बढ़ाऊंगा और श्रेष्ठ महलों में रखूंगा । तेरा परिचय न होने पर भी तेरा चहेरा यह बता रहा है कि तू किसी श्रेष्ठ कुल में जन्मी हुई पद्मिनी है इस जंगल में अनेक प्रकार के भय हैं । तेरे साथ कोई दिखायी भी नहीं देता इसलिए यहां ठहरना उचित नहीं । मैं तुझ पर प्रसन्न हूँ और तुझे हृदय से चाहता हूँ इसलिए मेरे साथ चल वहां हजारों दास दासी तथा दूसरी सब रानियां तेरी हाजरी में रहेगीं वहां सोने के लिए सुख शय्या रहने के लिए राज्य महल फिरने के लिए गाड़ी घोड़े और खाने को नित्य नये पकवान मिलेंगे और मैं स्वयं तेरे आधीन बन कर रहूँगा इसलिए उठ और मेरे साथ चल ।

राजा के उपरोक्त आमंत्रण सूचक वाक्य सुनकर मैंने उससे कहा कि-राजन् ! तुम मर्यादा पुरुषोत्तम होते हुए कामातुर होकर क्या बोल रहे हो और क्यों भान भूल रहे हो ? अपना आपा संभालो । मेरे स्वामी मध्यान्ह की भयंकर गर्मी में विश्रान्ति लेने को बैठाकर जल की शोध में गये हैं सो जल लेकर आते ही होंगे मैं कोई अनाथ नही परन्तु सनाथ हूँ तथा उत्तम खानदान की स्त्री हूँ पर पुरुषों को बन्धु व पिता तुल्य मानती हूँ इसलिए हे नरेन्द्र कदाचित् समुद्र मर्यादा त्याग दे, प्रलय काल का पवन मेरु को डिगा दे, सूर्य से अंधेरा हो जाय चन्द्र से अग्नि झरने लगे यह बातें न होने लायक

मी हो जावें परन्तु सती स्त्री अपना शील धर्म कभी नहीं त्यागती
तें भी आपके राज्य और सुखोपभोग के लालच में आकर अपना
ील धर्म त्यागने वाली नहीं हूँ मेरे सतीत्व के आगे इन्द्रासन को
ाी तृण समान तुच्छ मानती हूँ अतः आपको ऐसी अनुचित बात
कहना उचित नहीं है। जो सत्ताधीश होकर इस प्रकार अधर्माचरण
करने को तत्पर हो जाते हैं वह अपने पाप से बहुतों को ले डूबते
हैं अतः आपके मन की विकलता को शुद्ध करके मलिन भावना को
दूर कीजिये और प्रजा की सर्व स्त्रियों को बहन एवं पुत्री तुल्य मान
कर उनके रक्षक बनो इसी में आप नरेशों का कल्याण है।
किमाधिक्यम् ?

॰१९३।।१९१॰

प्रकरण ११ वाँ

अपहरण और पुत्र विछोह
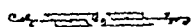
शम्भुस्वयंभूहरयो हरिणेक्षणानां,
येनाऽक्रियन्त सततं गृहकर्मदासा ॥
वाचामगोचर चरित्रविचित्रताय,
तस्मै नमो भगवते कुसुमायुधाय ॥ १ ॥

भावार्थ—जिसके वशीभूत होकर शम्भु (शिव) स्वयम्भू (ब्रह्मा) और हरि जैसे अवतारी पुरुष भी हरिण जैसे नयनों वाली स्त्रियों के आगे गृहकर्म करने को दास बन गये है जिसका वर्णन वाचा से परे व चरित्र विचित्र है ऐसे कुसुम के आयुध वाले भगवान कामदेव को मेरा नमस्कार है।

जिस कामदेव के आगे ऐसे २ अवतारी महापुरुष भी झुक गये हैं और परास्त होकर अपनी हार मान गये हैं वहाँ एक साधारण मानवी की क्या ताकत है जो सामने टिक सके ? मेरे बहुत समझाने पर भी वह पराजित भूपति घोड़े से नीचे उतर कर मुझे पकड़ के बलात् घोड़े पर डालकर आप भी सवार हो वहां से चल दिया। उस समय मैंने मुक्त होने के बहुत प्रयत्न किये परन्तु मेरी

गई और बीच में ही यह बनाव बनने से अपन पृथक् पृथक् हो गये। जिसको करीब तेरह वर्ष हो गये हैं। पश्चात् तेरा जो हुआ सो तेने उन तेरे पालक माता पिता से जानकर कहा ही है कि वनजारा आया उसने तुझे उठाया और तेरा पालन पोषण हुआ।

आज तेरह वर्ष बाद तेरा दीदार देखने को मिला परन्तु ऐसा अनिष्ट प्रसंग लेकर तू आया कि जो किसी भी तरह वाञ्छनीय नहीं कहा जाय। मेरे जीवन को धिक्कार है जो मेरे अंगजात पुत्र की भी मेरे प्रति बुरी नज़र दुर्दैवने कराई पूर्व संस्कारों में न जाने क्या चमत्कार है जो हमें बचाने के निमितभूत बन गये। इतना कहने के साथ ही सती फिर रो पड़ी और उभय नयनों से अश्रुधारा बहाने लगी यह देखकर हंसराज को भी यह खातरी हो गई कि यही मेरी जन्मदात्री सच्ची माता है।

उसी समय हंसराज के हृदय में चिन्ता की भयंकर व्यथा उत्पन्न हुई और वह अनेक कल्पनाओं की वेदी में दहलता हुआ मूर्छित होकर गिर पड़ा।

यह हालत देखकर सती एकदम घबरायी और उसके पास जाकर अपनी साड़ी के अंचल से पवन डालती हुई उसे सुधि में लाने का प्रयत्न करने लगी कुछ समय में सुधि आते ही वह भी हृदय फाट रूदन करने लगा और आन्तरिक व्यथा पूर्ण इस अज्ञात पाप की परमात्मा से बारम्बार क्षमा मांगने लगा कि प्रभो! अब मेरा उद्धार कैसे होगा मैं इस महापाप से किस तरह बचूंगा। मैं नहीं जानता था कि यह मेरी जन्मदात्री माता है इसी से मैंने यह दुःसाहस किया प्रभो, आप दयालु हैं मुझे क्षमा करना।

प्रकरण १२ वाँ

माता वेश्या-घर में कैसे ?
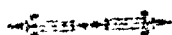
हंसराज को रुदन करता हुआ देखकर सती उसे कहने लगी—हे पुत्र ! मेरे जीवन के आधार ! अब शान्त रह, तैने जो पहले विषय पूर्ण प्रार्थना की थी वह अज्ञता के कारण थी इसलिये क्षन्य है । अतः हृदय को मजबूत करके इस चिन्ता को छोड़ ।

अखिल ब्रह्माण्ड में भव भ्रमण करते हुए इस आत्मा ने प्रत्येक जीव के साथ एक दो बार नहीं अनेक बार सम विषम सम्बन्ध किये हैं और विधि की विचित्रता से ऐसे २ विषम संयोगों में गुज़रना पड़ता है जिसकी मनुष्य कल्पना भी नहीं कर सकता । कुबेरदत्त एवं कुबेरदत्ता की कथा जम्बु चरित्र में गायी जाती है जिसमें एक ही भव में एक २ के साथ छः छः नाता किये गये । यह बताकर मोहदशा का साक्षात् चित्र खड़ा कर दिया गया है इत्यादि बहुत समझाने पर हंसराज जिसका इस माता ने देवदत्त नाम दिया था लज्जित होता हुआ उठकर माता के चरणों में गिर पड़ा और कहने लगा:—

सोरठा

पवित्र मेरी मात, पृथ्वी तल पावन कियो,
सती गुणे विख्यात, कोड़ नमन है आपको ॥
स्वर्ग मृत्यु पाताल, तीन भवन में मातजी,
तुम कीर्ति विख्यात, रहो हमेशा झलकती ॥ १ ॥

पूज्य मातेश्वरी ! इस विशाल विश्व में दृष्टि दौड़ाते हुए कहां तो आपकी निर्मल पवित्रता और कहां मेरी अधमता ? अब मेरा कैसे उद्धार होगा ? परमात्मा से क्षमा मांगते हुए भी मुझे लज्जा होती है। परन्तु मुझे एक और भी वितर्क हो रहा है सो कृपा कर यह बतलाइये कि आप उस राजा के यहां से निकलकर इस वेश्या मन्दिर में कैसे प्रविष्ट हुईं ? तथा मेरे पिताश्री का क्या हाल हुआ होगा और वे कहां हैं ? मैं पूरी तरह स्थिति जानना चाहता हूँ।

अपने पुत्र का यह कथन सुनकर निःश्वास डालती हुई सती कहने लगी प्रिय पुत्र ! मेरी बीती वार्ता मैं क्या कहूँ ? वह घटना याद आते ही आत्मा में गहरी वेदना होती है चित्त विह्वल हो उठता है दुख का दरिया उमड़ आता है। जैसी मैंने स्त्री स्वभाव सुलभ बिना सोचे विचारे आवेश में आकर योजना की वैसे ही नतीजा पाया है कहा है कि:—

बिना विचारे जो करे सो पीछे पछताय ॥
काम बिगारे आपनो, जग में होत हँसाय ॥

मेरी मूर्च्छा से पर हटा तब पृथक पृथक हुए और मेरी
ई खुलना हुई। हे लाल ! जब राजा मुझे महल के दीवानखाने
दाखिल कराके गया उस समय पिंजरे में पुरानी हुई पंखिनी की
तरह मैं उदास होकर विचारने लगी कि प्रभो ! मेरे दो वर्ष के
मत बालक की उस भयानक जंगल में क्या दशा हुई होगी ?
ह पुत्र अपने पिता को मिला होगा कि नहीं ? मेरे स्वामी उसको
कर कहां गये होंगे ? मुझे न पाकर जंगल में उनकी क्या दशा
ई होगी मुझे खोजने को कहां कहां भटकते होंगे ? पुत्र को कौन
भालेगा ? वह मेरी अनुपस्थिति में किसे माता कहकर पुकारेगा ?
स प्रकार की चिन्ताओं में मग्न हो रही थी और गले के हाथ
गाकर दुःख के दरिया में गोते खा रही थी। सजे हुए महल की
तरफ मेरी नजर भी नहीं थी। इतने में एक दासी ने आकर उस
अवस्था ने जागृत की और मधुर स्वर में कहने लगी—बाई
साहब थकी हुई होगी, चलो स्नानादि से निपटलो सो थकावट दूर
होगी और शान्ति मिलेगी। यह सुनकर भी मुझे वह कुछ भी
अच्छा नहीं लगता था। मैं तो उसी चिन्ता में व्यस्त थी परन्तु
उसके अत्याग्रह से उठकर स्नानादि किया। इतने में दूसरी दासियाँ
भोजन का थाल लेकर आईं और खाने के लिए आग्रह करने
लगीं। परन्तु हे लाल मुझे तेरा और पति का स्मरण होते ही दोनों
आँखों से अश्रुओं की धारा बह चली। अन्न देव को नमस्कार
करके दासियों से कहा कि बहनों आप थाल लेकर आयी हैं लेकिन
मेरे जैसी निर्भागन को अभी तो किसी भी तरह यह अन्न गले उत-
रता नहीं तुम वापिस ले जाओ। मुझे तो यह ठाठ देखकर अधिक
पीड़ा होती है इसलिये मेरी नजर से दूर हटाओ। ऐसा कहती
हूँ इतने में तो सीढ़ियों की तरफ से खलबलाहट सुनायी दी। महा-

प्रकरण १३ वां

युक्ति पूर्वक स्वरक्षण

राजा को कामान्ध दशा में यद्वा तद्वा बोलता हुआ देख-कर पहले तो मैंने शिष्ट भाषा में उसे बहुत समझाने का प्रयत्न किया और कहा कि राजन् मुझे तुम्हारे इन महल, आभूषण एवं सुख समृद्धि की परवाह नहीं है न मैं इनसे ललचा ही सकती हूँ मुझे तो मेरे शील धर्म की रक्षा अभीष्ट है सो चाहे कितना भी संकट क्यों न आवे उसका मैं हृदय पूर्वक हँसते हुए स्वागत करुंगी परन्तु आप की इन बातों में फंसकर अपना शील धर्म नष्ट न होने दूंगी।

इतना सत्य सुनाते हुए भी जिसका पराभव कामदेव के आगे हो चुका है उसे धैर्य कहां, और वह मेरी बात क्यों सुनने लगा? महाराजा मेरा हाथ पकड़ने को आता है। यह देख मैंने कुछ दूर खिसककर मुक्त करने की बहुत ही चेष्टा की परन्तु वह सब व्यर्थ हुई। राजा गुस्से होकर कहने लगा कि याद रखना मेरा वचन नहीं मानकर कहां जा सकती है? मैं देख लेता हूँ. तब मैंने सोचा कि मेरी मदद पर आने वाला यहां कोई नहीं है और यह बलात्कार कर गुजरेगा अतः उत्तम तो यह है कि कोई युक्ति

होगा यह समय टाल दिया जाय। [illegible]
ऐसा विचार करती हुई कहने लगी कि महाराज, [illegible]
राज्य भी इसी तरह चलाते होंगे। मुझे तो [illegible] यह [illegible]
है कि धर्म के अभाव में राज्य कैसे चलता होगा?

यह सुनकर राजा कुछ लज्जित होने लगा। यह अवसर उपयुक्त देखकर मैंने कहा कि राजेन्द्र! मैंने आपकी कुल देवी से यह मान्यता की है कि जहां तक मेरे पति तथा पुत्र का पता न लगे वहां तक मैं किसी भी पुरुष का स्पर्श न करूंगी अतः मुझे एक वर्ष की अवधि दीजिये। इतने में भी पता नहीं लगेगा तो मैं कहां जाने वाली हूँ? आपके कब्जे में ही हूँ। इतने में मेरी मान्यता पूर्ण हो जावेगी। इस उपरान्त भी आप नहीं मानेंगे और बलात्कार करेंगे तो मैं अपघात करके अपने प्राण दे दूंगी किन्तु भेंट करूंगी नहीं।

यह सुनकर राजा सोचने लगा कि आखिर जिसके साथ जिन्दगी सुख चैन से बितानी है प्रीति करनी है उससे प्रसन्नता पूर्वक ही आनन्द रस ले सकूंगा अन्यथा यह उत्तम नारी रत्न गुमा बैठूंगा क्योंकि आवेश में आकर अनर्थ कर बैठेगी तो मेरी बदनामी होगी। यह विचार कर उसने मेरी मांगी हुई अवधि स्वीकार की और कहा कि जैसी तुम्हारी इच्छा हो वैसा करो मैं तुम्हारे लिये जितना भी द्रव्य चाहिये उतना प्रबन्ध किये देता हूँ। सुख से रहो परन्तु अवधि के उपरान्त फिर मानूंगा नहीं। यह कहता हुआ राजा वापिस लौट गया। मैंने भी धैर्य धारण कर राजवाडे के चौक में दानशाला खोलकर दान देना और विदेशियों को सन्तोष देना प्रारम्भ किया तथा चारों दिशाओं

के द्वार पर मनुष्यों को रख दिये कि कोई विदेशी आवे उसे यहां लावें। ऐसा करने का मेरा उद्देश्य यह था कि पति का पता मिल जावे तो उनके साथ युक्ति द्वारा यहां से छुटकारा पाऊं नहीं तो प्राण त्याग कर शील की रक्षा करूं। यही मेरा अन्तिम ध्येय था।

काल का स्वभाव बीतने का है और दूर दिखती हुई अवधि को सन्निकट लाने का है। तदनुसार राजा की दी हुई एक वर्ष की अवधि भी पूर्ण होने आई परन्तु पति देव का पता न मिलने से मेरा धैर्य छूटता जाता था।

उधर तेरे पिता ब्रह्मदत्त जिनका नाम है अपनी पत्नी एवं पुत्र को वटवृक्ष के नीचे छोड़कर जल की शोध में गये थे। वे कुछ समय बाद जल लेकर वापिस आये तब देखते हैं तो न पत्नी न पुत्र ही। यह देखते ही बेभान होकर गिर पड़े परन्तु उस समय उनको थामने या धैर्य देने वाला था नहीं सो सावचेत करे। यह कार्य भी प्रकृति को ही करना पड़ा। कुछ समय पड़े रहने के बाद शीतल समीर की लहरियों से सुधि में आते ही हृदय द्रावक रुदन करने लगे और आसपास के स्थानों को ढूंढने लगे। बहुत स्थान ढूंढ डाले परन्तु दोनों में से एक का भी पता न लगा। तब निराश होकर विचारने लगे कि, मेरी कान्ता को इस वन में कोई अपहरण करके ले गया अथवा वह किसी जंगली जानवर की शिकार बनी है। मैं किसे जाकर पूछूं? इधर उधर भटकते २ दिन पूर्ण होकर रात्रि पड़ी। अनेक प्रकार के जंगली जानवरों की आवाज हृदय को परिताप उपजाती थी तथा पुत्र एवं पत्नी के विरह में वह रात्रि वर्ष जैसी दीर्घ बन गई। जरा भी नींद न

निश्चय करके आगन्तुक को द्वार पर विश्रान्ति लेने का कहलाकर मैं महल में गई और दिल को मजबूत कर एक पत्र लिखा और वह नाश्ता की पुडिया में बाँधकर सीधा सामान के साथ पति देव के पास भिजवा दिया। ब्राह्मण अज्ञात अवस्था में रानी का उपकार मानता हुआ वहां से चल दिया।

कुछ दूर जाकर भूख अधिक लगने से रसोई बनाने की जंजाल में न पड़ते हुए एकान्त स्थान में आकर नाश्ता करने को वह पुडिया खोली। पुडिया खोलते ही नाश्ता के साथ वह पत्र दिखाई दिया। पत्र को देखते ही अपनी प्रिया जैसे अक्षरों को पह-चान कर पुलकित होता हुआ नाश्ता करना छोड़ रहल पत्र पढने लगा जिसमें लिखा था:—

प्राणेश,

कदाचित् आये हुए संकट की अवधि पूर्ण होने आयी हो और दोनों का पुनः मिलन विधि ने निर्माण किया होगा तो मैं अपना हृदय खोलकर सुख दुख की बीतक वार्ता साक्षात् ही कहूँगी। पत्र में क्या लिखूं? मनुष्य मात्र मनसूबे के महल बनाता है। मिलना कर्माधीन है। क्यों कि मैं पराधीन हूँ। मेरी आपको मात्र इतनी ही सूचना है कि इस शहर से बाहर पूर्व दिशा में थोड़ी ही दूरी पर एक जीर्ण शिवालय है वहां आप रात्रि में विश्राम करें। मैं राजा के संकट जाल से छूटकर वहां आनेका विचार रखती हूँ कदाचित् देव योग से मुक्त न हो सकी तो मेरे शील रत्न की रक्षा के खातिर प्राणों का बलिदान भी देना पड़े ऐसी हालत में मेरा अन्तिम प्रणाम मानकर संतोष करना।

आपकी दुखी सेविका

पत्र को पढ़ते ही अपनी पत्नी की हृदय वेधक स्थिति जान कर उनका हृदय पिघल गया और दोनों नयनों से अविरल अश्रधारा वह चली। कुछ हृदय खाली होने से विचारने लगा कि मेरी प्रिया कुशल होने के साथ ही पराधीन होते हुए भी पवित्र रही है तथा आज रात्रि में मुझ से मिलने के प्रयत्न में है। इस आशा से अपने आपे को संभालता हुआ मन ही मन कहता है प्रिये धन्य है तेरे धैर्य को। धन्य तेरे चातुर्य को और धन्य है तेरी पवित्रता को। जो राज्य भवन में पहुँच कर भी पवित्रता कायम रखी है और राजा के लालच भरे आमंत्रण को ठुकरा कर मुझ सरीखे भिक्षुक वृत्ति वाले को पति रूप में भज रही है और प्राणांत कष्ट उठा कर भी अपना गौरवमय शील धर्म कायम रखना चाहती है। ऐसी साध्वी स्त्री को पाकर मैं अवश्य ही कृतकृत्य हुआ हूँ। आह ! पृथ्वी को पावन करने वाली स्त्रियाँ हों तो ऐसी हों। इस प्रकार वह आनन्द विभोर बना हुआ अपनी प्रिया का भेजा हुआ नाश्ता करने लगा।

प्रकरण १४ वां.

कामान्ध का सर्वनाश और मेरा छुटकारा
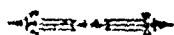
सती कहती है कि हे पुत्र ! पति देव को सीधा देकर विदा करने के बाद कुछ समय तक तो झरोखे की खिड़की में से उन्हें देखती रही। जब वे दृष्टि से बाहर हुए तब मैं अश्रुप्लावित नयन कर भवन के मध्य में आकर एक पर्यंक के पास बैठकर विचार करने लगी कि जिस प्रकार मैं पति के विरह से दुखी हुई उसी प्रकार पति भी मेरे लिए दुखी हो गये हैं। अब मैं इस राजा की जाल से मुक्त होकर कब उनके दुखी हृदय को दिलासा देने वाली बनूंगी। इसी तरह पुत्र देवदत्त का मुंह भी देखने का विधि ने मेरे भाग्य में निर्माण किया है या नहीं ? मैं कहां कब और कैसे उस का मुंह देख सकूंगी इत्यादि विचार में मग्न हो रही थी।

उसी समय एक दासी उतावली २ आकर कहने लगी—बाई साहब ! इस प्रकार विचारों में क्या डूबी हुई हो तथा आंख में आंसू क्यों आ रहे हैं ? आज तो बड़ा ही प्रसन्नता का समय है। महाराजा साहब की आप पर असीम कृपा है इसलिए उन्होंने आपके लिये बहुत तैयारियाँ [illegible] ।ज

में पटरानी बनाकर आपका

करने के लिए आपके इस महलमें पधार रहे हैं। मैं यह सुवासित सुगन्ध जल लायी हूँ सो आप उठो और स्नानादि से अपने शरीर को सुशोभित बनाओ। जब मैं नहीं उठी तब बहुत दासियों ने एकत्रित होकर मुझे उठाी और स्नानादि करा कर लाये हुये हीरादि वस्त्राभूषण धारण कराये इतना करके वे वापिस चली गईं।

सती विचार करने लगी कि अब मैं क्या करूं और कैसे मेरे शील धर्म की रक्षा करूं एवं किस प्रकार यहां से छिटक कर मेरे प्राणनाथ से जाकर मिलूं ? शिवालयमें वे मेरी राह देखते होंगे। इत्यादि चिन्ताओं में बैठी हुई थी इतने में सायंकाल हुआ सूर्यदेव से अन्याय नहीं देखा गया इसलिए अस्ताचल की ओट में जा छिपे परन्तु कामी पुरुष उसके बदले कृत्रिम उपायों से काम लेते हैं। तदनुसार राजा के सेवक पुरुषों ने आकर भवन को रोशनी से जगमगायमान कर दिया। कुछ ही समय बाद राजा स्वयं कई प्रकार के विचारों में प्रसन्नता प्रकट करता हुआ सुन्दर वस्त्राभूषण से सुसज्जित होकर महल में आया परन्तु वहां की स्थिति और खासकर मेरी चर्या का निरीक्षण करने को सीढ़ियों पर ही खड़ा रह गया और निरीक्षण करता है तो मेरी पोशाक भव्य एवं आकर्षक होते हुए भी मेरा पहना हुआ कन्चुक अश्रुओं से गीला हो रहा है चेहरा उदास बनरहा है और पर्यंक के नजदीक दिवाल का सहारा लेकर उदास चित्त बैठी हुई मुझे देखकर राजा विचार करता है कि इस दिव्य महल में सब सुख इसके स्वाधीन होते हुए और आज इसे पटरानी का पद देकर इसका सन्मान बढ़ाने को आया हूँ इस हर्ष के प्रसंग में भी यह क्यों झूर रही है और इसे क्या दुख है सो ऊपर जाकर इसे पूछूं। यही विचार कर

वह महल में आया । सीढ़ियों से पग संचार सुनकर मैं भी जग गी और सोचने लगी कि अब तो मेरे जीवन का अन्तिम समय आ पहुंचा है । अब इस मदनातुर राजा के पंजे से छूटने का कोई रास्ता दिखायी नहीं दे रहा है । अतः झरोखे में से कूदकर सुलाता को मेरा शरीर अर्पण करूं और पवित्र स्थिति में ही परलोक की पथिक बनूं । मैं यह विचार कर रही हूं इतने में राजा पलंग पर आकर बैठा और कहने लगा सुनो सुन्दरी, अब तेरी अवधि भी पूर्ण हो चुकी है सो मेरे अधीन होकर पटरानी का पद स्वीकार करलो अन्यथा मैं देख लेता हूं कि तेरा कितना बल है और तू क्या कर सकती है ? यह वाक्य सुनकर मैं सोच रही थी कि अब राजा मुझे किसी भी तरह पवित्र स्थिति में रहने दे यह सम्भव नहीं इसलिये मेरे शील धर्म की रक्षा के खातिर महल से नीचे कूदकर प्राण तज दूं इतनी दृढ़ता मेरे में है । परन्तु मेरे पतिदेव शिवालय में मेरी प्रतीक्षा करते होंगे उनको आज ही मिलने का आश्वासन दिया है इस लिए एक बार फिर युक्ति से काम लूं अन्यथा अन्तिम मार्ग तो ग्रहण करना ही है ।

जहां आयुष्य बल शेष होता है वहां काल की दाढ़ में गये हुए को भी युक्ति मिल जाती है और वह उसका उपयोग भी कर लेता है ।

सती कहती है कि हे लाल ! मैं अपने आंसूओं को पोंछती हुई हर्षित होकर राजा से कहने लगी राजेश्वर ! आपका महल में पधारना ही मेरे भाग्योदय का चिन्ह है परन्तु एक वर्ष पहले मैंने अपने प्रिय पुत्र एवं पति को जंगल में छोड़े थे वह घटना याद आ जाने से मेरा चित्त व्याकुल बन रहा था । इसलिए मैं आपका

सत्कार नहीं कर सकी इसके लिए क्षमा चाहती हूँ। ऐसा भव्य महल, यह दिव्य ऋद्धि एवं प्रेम प्रभावी रूप पटरानी पद किस स्त्री को न ललचावे? मैं आपकी हूँ ऐसा मानिये। आपकी आज्ञा को मान देना मेरा कर्तव्य है। इत्यादि स्त्री चरित्र रूपी जाल फैलाना मैंने प्रारम्भ किया।

मेरे मृदु शब्द सुनते ही राजा का हृदय आनन्द विभोर बन गया और विचारने लगा कि अब यह मेरे अधीन होने को सहमत बन गयी है इसलिये मैं भी इसे दिलासा देकर प्रसन्न करूँ। यह सोचकर वह कहने लगा—

हे सुन्दरी! तुझे यहां लाते समय उस छोटे बच्चे को साथ लाना जरूरी था किन्तु मोहान्ध दशा में मैं भूल गया। साथ नहीं लिया इसका मुझे भी अफसोस है। परन्तु अब क्या हो सकता है? वह पुत्र उसके पिता को मिल गया होगा वास्ते चिन्ता छोड़ो और इस पलंग पर आकर मेरी मुराद पूर्ण करो। ऐसा कहने के साथ ही वह मेरा हाथ पकड़ने लगा। तुरन्त ही मैं जरा दूर खिसक कर कहने लगी—

वाह! जी वाह! इतनी अधीरता! मैं कहां भग कर जा रही हूँ? जो आप सचमुच आनन्द लूटने आये हैं तो उस योग्य साधन सामग्री तो यहां कुछ है भी नहीं। जैसे पान, सुपारी सुगन्धी और नशैली चीजें। विलासी स्त्री पुरुषों के समागम में ये पदार्थ आवश्यक माने गये हैं। मैं भी आज कैफी पदार्थ लेना चाहती हूँ इसलिये दो बोतल भी मंगवाइये। यह सुनते ही वे चीजें हाजिर की गई।

अँधेरे में शहर के परकोटे की तरफ चली परन्तु दरवाजे पर पहरा लगता है सो मेरी और नहीं गई यह सोच कोई दूसरा छोटा सा रास्ता ढूंढने लगी। अन्त में पानी निकलने का एक नाला दिखायी दिया। उसमें होकर शहर के बाहर निकल शिवालय का रास्ता लिया। रास्ते में अनेक कांटे व कंकर चुभ रहे थे परन्तु किसी तरह पति के पास पहुँच जाऊं इस भावना से उपेक्षा करती हुई एक ध्यान से शिवालय की तरफ चल दी।
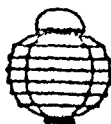
ने स्वामी की रक्षा नहीं की। इसी तरह जिस अम्बिका की
ना (बोलना) करके घर से पुत्र को साथ लेकर हम दोनों
ति पत्नी निकले और दर्शनार्थ जा रहे थे उस देवी ने भी मेरा
त हुआ तब मेरी रक्षा नहीं की इससे यह स्पष्ट तौर से सिद्ध
कि अब मूर्तियों में देव नहीं है देव तो विशुद्ध भावना में है
सर्वत्र विद्यमान ही है। फिर भी उसे न देखकर अज्ञ जन
दिर, मस्जिद, चर्च और पहाड़ों में ढूंढते हैं यही मिथ्या
श्रद्धा है।

प्रकरण २६ नां.

छल की धुन में
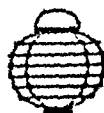
हे पुत्र ! मैंने उस शिवालय में रुदन करते २ हृदय खाली कर डाला परन्तु वहां कोई दिलासा देने वाला नहीं था। तब मैं विचार करने लगी कि पति का शव पड़ा हुआ है इसकी अन्त्येष्टि क्रिया करना भी जरूरी है परन्तु मेरे पास यहां तो कोई साधन नहीं है। शहर यहां से दूर है। शहर में जाकर कहूँ या दाह का सामान लाऊं तो भोर होने से पहले तो मिलता नहीं और भोर होने पर राजा की जो दशा हुई है वह छिपी रहेगी नहीं अवश्य ही मेरी तलाश होगी और मेरी यह पोशाक दाग दागिने मुझे गिरफ्तार कराये बिना रहेंगे नहीं। इसलिये उचित यही है कि इस खटपट में न पड़ते हुए सूर्योदय से पहले ही इस शहर की सीमा से मुझे बाहर हो जाना चाहिये अन्यथा सवार छूट गये और मुझे देख लेंगे तो मेरी क्या दशा होगी ?

राजा को मारने का मेरा अंश भर भी इरादा नहीं था। न मैंने मारने के इरादे से नशा दिया। मेरी भावना केवल बेभान कर के छटकने की थी परन्तु राजा का हार्ट फैल होकर मृत्यु हो

है यह भी मेरे लिये दुख का विषय है और पति का स्वर्गवास
तो असह्य है परन्तु विधि को जो मंजूर था वही हुआ । अब
इरादा यही है कि रात्रि रहते ही मैं यहां से निकल जाऊं और
किसी गांव में जाकर मकान लेकर अपना शेष जीवन भगवद्भजन
में लगाऊं मेरे शरीर पर यह जो दागीने हैं इनसे मेरा
गुजारा हो जाएगा ।

उपरोक्त विचार करके पति के शव को वहीं छोड़कर मैं
शिवालय से बाहर हो गई और जंगल का रास्ता लिया । रात
का समय और अपरिचित मार्ग होने से रास्ते में कंकर व कंटक
चुभ रहे थे, पग ऊंचे नीचे पड़ रहे थे जंगली जानवरों के भयंकर
शब्द सुनाई दे रहे थे उनकी परवाह न करके किसी के हाथ न पड़
जाऊं, किसी सुरक्षित स्थान पर पहुँच जाऊं यही मेरे हृदय में चाह
थी । इससे दरकूच चली जा रही थी । कुछ २ प्रकाश हुआ । उस
समय देखती हूँ तो मनुष्यों की आवाज सुनायी दी । मैं चमकी
और इधर उधर देखती हुई सावधानी से जा रही थी इतने में
आगे एक वृक्ष के नीचे कुछ मनुष्य आपस में बातचीत करते
दिखाई दिये । उनके चेहरे पर से वे कोई सभ्य मनुष्य नही किन्तु
चोर डाकू जैसे दिखायी देते थे । मैं घबरायी और उनकी नजर
चुका कर तिरछी निकल जाने के इरादे से दक्षिण के रास्ते मुड़ी ।
परन्तु मेरे भाग्य में से दुख अभी दूर नही हुए थे इससे आगे
जाते हुए एक खड्डे में गिर पड़ी जिसमें कूड़ा कचरा और सूखे
पत्ते भरे हुए थे । उसकी आवाज हुई सो उन चोरों ने सुनी । वे
भी चमके और उठकर इधर उधर देखने लगे । मैं उस खड्डे में से
उठकर निकल रही थी सो उन्होंने देखा ।

एक चोरों का [illegible] हुए [illegible] में से निकल कर भाग रही हूँ। उनके साथ [illegible] मनुष्य [illegible] है। [illegible] भी मेरे पीछे पड़े और मुझे घेर ली। मैंने उनसे बहुत अनुनय विनय की परन्तु कौन सुने? उन्होंने कहा तेरे सब आभूषण [illegible] उतार दे मैंने एक एक करके [illegible] आभूषण [illegible] उतार दिये परन्तु वे कब मानने वाले थे? वह भी उनका [illegible] फिर भी मुझे नहीं छोड़ी। मैंने बहुत दीनता प्रकट करके छोड़ देने को कहा परन्तु वे मेरे रूप में पागल हो रहे थे सो कौन माने? मुझे घसीट कर नजदीक में रही हुई भाड़ी तरफ ले गये और मुझ से अपनी लालसा पूरी करनी चाही। मैंने स्पष्ट कह दिया कि प्राण देना मंजूर है परन्तु शील भंग नहीं होने दूंगी। तब वे निराश हुए और सोचा कि इसे किसी शहर में ले जाकर बेच दी जावे। यह तय करके मुझे साथ ले तीन दिन में इस चम्पावती में आये। शहर के बाहर सराय में ठहरे उनमें से दो शहर में आये दो मेरे पास रहे।

शहर में आये हुए दो चोरों ने कुछ नाश्ता किया और मेरे लिये स्थान ढूंढने लगे। कई बड़ी २ हवेलियें देखीं परन्तु कहने की हिम्मत नहीं पड़ती थी। फिरते २ इस हवेली के पास आकर खड़े रहे। तब इस हवेली की नायिका ने उन्हें दुत्कारे और कहा जाओ तुम दरिद्रों के लिये कोई स्थान नहीं है। वे बोले—मांजी हमारे पास एक बहुमूल्य वस्तु है उसे बेचना है जिसके लिये स्थान देख रहे है। नायिका ने कहा क्या वस्तु है? उन्होंने कहा एक दिव्य मनोहर अप्सरा को लज्जित करे वैसी स्त्री है। उसने कहा तुम यहां लाकर मुझे दिखाओ। मैं तुम्हें मुंह मांगे दाम दूंगी। वे

तुरन्त सराय में आये और नाश्ता करके मुझे भी नाश्ता करने को कहा। परन्तु मुझे तो वह खाना पीना हराम हो रहा था उनके बहुत कहने पर भी मैंने नहीं खाया। वे मुझे लेकर शहर में आये और नायिका को दिखायी। उसने देखते ही प्रसन्न होकर मेरा मूल्य पूछा। गँवार लोग जितना उनका हौसला हो उतना ही बतावे। उन्होंने सलाह की तो कोई पांच बीसी और कोई सात बीसी कहने लगा अन्त में उन्होंने सात बीसी रूपये लेकर मुझे नायिका को सौंप दी।

मैंने नायिका से पूछा मांजी आप कौन जाति हैं? मैं एक ब्राह्मण जाति की बाला हूँ आपद्ग्रस्त हूँ। अपना धर्म निभाना चाहती हूँ आप इसमें सहायक बनोगी? उत्तर में नायिका ने कहा मुग्धे! हमारी जाति पांति क्या पूछती हो। हमारी सदा सुखी जाति है अखण्ड सौभाग्य सम्पन्ना हैं नित्य नये २ पुरुषों का सेवन करना और संसार का आनन्द लूटना ही हमारा धर्म है। यह सुनते ही मेरे होश उड़ गये और कुल्हाड़ी द्वारा छेदी गई लता की भाँति मूर्छित होकर भूमि पर गिर पड़ी। थोड़ी देर में सुधि आने से आक्रन्द और विलाप करती हुई नायिका से कहने लगी—माजी! मैं वेश्या नहीं परन्तु कुलीन कान्ता हूँ। मुझ से आपका कोई स्वार्थ सिद्ध न होगा। मैं अपना धर्म (सतीत्व) छोड़ूंगी नहीं चाहे प्राण रहे या जाँय। मैं महा दुखी और विधवा हूँ मेरी शेष जिन्दगी प्रभु भक्ति में बिताना चाहती हूँ इसलिये मुझे मुक्त कर दीजिये परन्तु वह कब मानने वाली थी? उसने कहा मैंने तुझे अपने व्यवसाय के लिये खरीदी है। फिर भी तू नफरत करती है तो मैं तुझे ऐसे स्थान में रखूंगी जहां पर कभी कोई राजा महाराजा अमीर उमराव आवें उन्हें रिझाकर धन र[illegible] करना होगा।

सम्यग् भाव से सह ले तो आत्मा शीघ्र ही कर्म की परम्परा से छूट जाता है।

सती कहती है कि हे लाल ! इस प्रकार मैं अपने पूर्वोपार्जित कर्म के अनुसार इस वेश्या गृह में दाखिल हुई हूँ। यह मेरी बीतक वार्ता है।

जैन दर्शन में यदि आत्मा से कोई अनुचित कृत्य हो जावे तो उसकी शुद्धि के लिये आलोचना एवं प्रायश्चित्त का विधान है प्रायश्चित्त करने से क्रूर कर्म भी मन्द रस वाले बनकर आत्मा से दूर हो जाते हैं और शीघ्र ही वह आत्मा उन्नत अवस्था प्राप्त कर लेता है यानी साधक दशा से सिद्ध बन जाता है। इस प्रकार माता ने बहुत समझाया परन्तु उसे शान्ति नहीं हुई। अधिकाधिक पश्चात्ताप की भट्टी में उसका हृदय जलने लगा और पाप का पश्चात्ताप करते २ प्रायश्चित्त करते २ अपने पास में रही हुई कटार को हाथ में लेकर सती हाथ पकड़ने लगी इतने में तो अपने हाथ से ही कलेजे में पार कर दी और भूमि पर ढल पड़ा।

सती यह देखकर हक्की बक्की हो गई और वह भी मूर्च्छित भूमि पर ढल पड़ी। कुछ समय तक बेसुध अवस्था में पड़ी रही। बाद में सुधि आते ही वह बैठी होकर हृदय बेधक रुदन करने लगी। उसका हृदय वेधक रुदन सुनकर छठे मंजिल में रही अनेक सुन्दरियाँ ऊपर आयीं परन्तु युवक की वह गम्भीर स्थिति देखकर तुरन्त नीचे गई और नायिका को खबर दी। नायिका क्रोध में धमधमायमान होती हुई ऊपर आयी। देखती है तो युवक के हृदय में कटार भोंकी हुई है और उसका शव लम्बा पड़ा हुआ है। आस पास रक्त के हौज से भर गये हैं। यह त्रास दायक दृश्य देखकर गुस्से से उन्मत्त बनी हुई नायिका उस सती को तिरस्कार पूर्वक कहने लगी—

अय पापात्मा! जुल्म करने वाली चाण्डालिका! तुझे हजार धिक्कार है इस परायी थापण रूप वणजारा के पुत्र को शील कायम रखने के लिये तेने मार डाला। अब मैं उस वणजारे

प्रकरण १७ वां

पाप का प्रायश्चित्त "आत्म हत्या"

माता के मुंह से उपरोक्त कथन सुनकर हंसराज सोचने लगा कि यही मेरी सच्ची जन्मदात्री माता है। वह बहुत लज्जित हुआ और माता के प्रति कुबुद्धि उत्पन्न हुई, विषयाभिलाष से हाथ पकड़ा था उस दुष्कृत्य के लिए उसका हृदय पश्चात्ताप की भट्टी में भुन रहा था। वह आँखों से अश्रुधारा बहाता हुआ पुनः माता के चरणों में गिर पड़ा और बार बार क्षमा मांगने लगा। सती उसे उठाकर अपने आंचल से उसके आंसू पोंछती हुई और दिलासा देती हुई कहने लगी हे पुत्र ! तैंने कोई ऐसा कुकृत्य नहीं किया है केवल अज्ञानता वश प्रार्थना की है।

अज्ञानावस्था में आत्मा कैसे २ कृत्य कर बैठता है इसके लिये श्री जम्बू चरित्र में कुबेरदत्त और कुबेरदत्ता की कथा अठारह नाता की चली है जिसमें कुबेरदत्त अपनी माता और बहन दोनों के साथ भ्रष्ट हुआ उसका बड़ी खूबी से वर्णन किया है और साध्वी कुबेरदत्ता ने उसे किस प्रकार बोध दिया यह चित्र खड़ा किया गया है। तूने वैसा नहीं किया है। जो अज्ञात अवस्था में किया वह क्षम्य है।

दुःख का पहाड़ टूट पड़ा। अब मैं भी क्षण भर जीवित नहीं रह सकूँगी। मैं भी इनकी चिता में अपना देह पात करूँगी। इस लिये इनके दूतों को खबर दो सो इनकी क्रिया करें। यह सुनकर द्वारिका और आस पास की सुन्दरियों ने आश्चर्य खिन्न होकर ने दिलासा दिया। आंसू पोंछे। शव को नीचे उतरवाया और द्वारका को खबर भेजी।

को क्या जवाब दूंगी ? यह कहने के साथ ही उसने लातों के प्रहार एवं गालों पर तमाचे लगाना आरम्भ कर दिये इससे वह फिर बेसुध होकर भूमि पर गिर पड़ी। कुछ समय निश्चेष्ट रहकर सुध आते ही करुण वदन एवं शब्दों में कहने लगी—अय प्राण ! क्यों तू इस खोखे में टिका हुआ है उड़ क्यों नहीं जाता ? मेरे दुख की तो अब सीमा ही नहीं रही है अब मुझे जीवित रहकर ही क्या करना है ? पुत्र के साथ तू भी क्यों नहीं चला जाता ? मेरे लिये तो रात पर रात आयी है।

इत्यादि सती के शब्द सुनने से और शव की तरफ देखने से ज्ञात हुआ कि इसने अपने ही हाथ से कटार खायी है। यह जानकर नायिका सती से कहने लगी कि यह क्या बात है और क्या मामला है ? सती अपने हृदय को थामकर कहने लगी-- माजी ! क्या कहूँ मेरा हृदय चिरा जा रहा है। मुझसे आज तक पहले आये हुए सब दुख सहन कर लिये गये परन्तु यह दुख सहा नहीं जाता। यह आने वाला पुरुष मेरा ही अंगजात पुत्र है। मुझसे दूर हुए तेरह वर्ष हो गये हैं। इसके मिलने की आशा से मैं जीवित रही और मेरे दिन गुजारे हैं परन्तु यह ऐसा कुप्रसंग लेकर इस दुखियारी माता से मिला कि कहा नहीं जाता। इसने विषय बुद्धि से मेरा हाथ पकड़ा कि हाथ का स्पर्श होते ही मेरा अंग स्फुरा और रोमांच होकर स्तनों में से दूध की धारा छूटी। इससे परस्पर शंका पैदा हुई और अधिक वार्तालाप से माता पुत्र का सम्बन्ध प्रकट होते ही मुझे इस नारकी जीवन में डुबाने के बदले इसने अपने ही हाथ से कटार अपनी छाती में मार ली। मैं हाथ पकड़ूँ इतने में तो वह पार हो गई। मेरे लिये

दुःख का पहाड़ टूट पड़ा। अब मैं भी क्षण भर जीवित नहीं रह सकूँगी। मैं भी इसकी चिता में अपना देह पात करूंगी। इस वास्ते इसके रक्षकों को खबर दो सो इसकी क्रिया करें। यह सुनकर नायिका और आस पास की सुन्दरियों ने साश्चर्य खिन्न होकर उसे दिलासा दिया। आंसू पौंछे। शव को नीचे उतराया और बनजारा को खबर भेजी।

वणजारा, उसकी स्त्री तथा बारद के मनुष्यों ने कल्पान्त करते करते गणिका के भवन में प्रवेश किया और अपने पुत्र की यह स्थिति देखकर वियोग के दुःख से पीड़ित हो बेभान स्थिति में भूमि पर ढल पड़े। नायिका आदि ने उसके मरण का कारण बताया। वणजारा पुत्र स्नेह में मुग्ध हो कहने लगा हे पुत्र! तेने हमें वृद्धावस्था में दगा दिया। यों न मरते हुए इस बाई की सेवा की होती तो हम सबका कल्याण होता। यह तेरी माता हमारी भी पूज्या बन जाती। इसे यहां से छुड़ाकर इसकी सेवा करते। परन्तु यह विचार पूर्ण कार्य नहीं किया इत्यादि कल्पान्त करते हुए उसके अग्नि संस्कार की तैयारी की गई और उसे रथी में बांध कर ले चले। उस समय वह सती भी साथ २ चली। उसे गणिका ने तथा सभी ने रोकने की बहुत चेष्टा की परन्तु उसने एक न मानी और चम्पावती के बाजार में पछाड़ खाती हुई जा रही है। शहर के बाहर नदी के किनारे पड़ाव के नजदीक पहुंच कर उसका अग्नि संस्कार करने के लिए चिता रची गई और हंसराज के शव को उसमें रखकर अग्नि लगायी कि वह सती चिता में पड़ने को चली उस समय फिर विणजारा उसकी स्त्री और अन्य लोग आकर उसको रोक कर समझाने लगे कि कैसा भी मरण

राज में इसे आपकी धर्म नीति तथा न्याय समझता आया हूं। यदि तुम प्रसन्न होकर सम्मति दो। पटेल ने प्रसन्नता पूर्वक अर्ज की कि राजेश्वर! हम सब आपकी प्रजा होने से आपकी आज्ञा को शिरोधार्य करना हमारा धर्म है। राजा ने उसे उचित पुरस्कार एवं साथ वाली स्त्रियों को हर्जाना देकर विदा की और रानी को सम्मान पूर्वक ले गया।

वहां रानी आनन्द पूर्वक रहती है। उसने रानियों तथा राज्य परिवार को सत् शिक्षा देकर भगवद्भजन में अपनी शेष जिन्दगी पूर्ण की और सब का कल्याण किया। इत्यलम्।
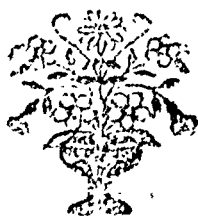
उपसंहार

कथा, चरित्र और वार्ताएँ हमारे लिए आदर्श (आरिसा) स्वरूप हैं। आरिसा अपने सन्मुख रखकर जिस प्रकार अपने अंग में, पोषाक में और शृंगार में रही हुई विकृतियों (कमियों) को दूर करके उसे सुन्दर शोभनीय एवं सुसंस्कारी बनाया जा सकता है उसी प्रकार कथाओं-चरित्रों से अपने जीवन की विकृतियों को दूर कर जीवन को आदर्श सुसंस्कारी एवं पवित्र बनाया जा सकता है। चाहिये हृदय की तैयारी।

उक्त आख्यायिका में हमारे वर्तमान जीवन का साक्षात् चित्र है। भारतीय असंस्कृत एवं अशिक्षित स्त्रियाँ जैन दर्शन की उच्च, तात्विक फिलॉसफी को भूलकर स्वल्प भी कष्ट आया कि तुरन्त बिना विचारे मानता—बोलमा कर लेती हैं और उसे पूरी करने के लिये पुरुषों को मजबूर करती हैं। इसका परिणाम क्या आता है कितने घोर कष्टों का शिकार बनना पड़ता है और अपना घर बार छूटकर कैसी बुरी दशा होती है यह इस कथा पर से समझ सकते हैं।

इस आख्यायिका में अन्य भी अनेक शिक्षाएँ ग्रहण करने ोग्य हैं। जैसे कि:—

(१) जिस मनुष्य को धर्मी के साथ होते हैं और जो सच्चरित्र होता है वह संसार की सब कुरीतियों के जाल में नहीं फंसता है।

(२) पूर्व काल में धन का संचय केवल कुटुम्ब के मुखिया के हाथ रहता था अतः किसी को भी रकम की आवश्यकता होती तो उसे कुटुम्ब के नायक के आगे जाहिर करना पड़ता और वह उचित समझता तो अपनी सम्मति एवं रकम देता इससे कुटुम्ब में संगठन रहता और बड़े छोटे की यथा योग्य मान मर्यादा कायम रहती। कुटुम्ब का नायक भी सब पर समान दृष्टि से कुटुम्ब के प्रत्येक मनुष्य के सुख दुख को समझता और उसे दूर करने का भरसक प्रयत्न करता।

(३) माता का ममत्व एवं वात्सल्य पुत्र के प्रति होना स्वाभाविक है। और वह अपने पुत्र को कष्ट पाता हुआ नहीं देख सकती परन्तु वर्तमान समय के मनुष्य माता के प्रति कितना सद्भाव रखते हैं यह विचारणीय है। पूर्व काल की भारतीय शिक्षा ऐसी होती थी जिससे घर में सद्भावना एवं विनय का शिष्ट व्यवहार होता जिससे दोनों का जीवन सुखी रहता था। परन्तु कुछ अर्द्धदग्ध शिक्षित युवकों ने स्वतंत्रता के वातावरण को स्वच्छन्दता में परिणत करके मान मर्यादा तोड़ दी जिससे घर में शान्ति के बदले घोर अशान्ति और क्लेश मय जीवन बन गया है।

(४) शील धर्म स्त्री एवं पुरुषों के लिये समान रूप से आचरणीय होने पर भी वह केवल स्त्रियों के लिये ही रिजर्व कायम कर पुरुष वर्ग ने उसे ठुकरा दिया है और स्वच्छन्दता

[पूर्व]क अनाचार सेवन करने में ही अपने पुरुषत्व को सार्थक मान [लि]या है इसी से स्त्रियों में भी पुनर्विवाह आदि की भावना जागृत [हो]ने लगी है। यदि पुरुष अपनी कामेच्छा पर संयम रखना सीखे [तो] इस संसार को स्वर्ग बनने में देरी न लगे और विषमता रहने [ही] न पावे।

(५) प्रत्येक काम मनुष्य को सोच विचार कर करना चाहिये। आवेश में आकर कोई काम ऐसा नहीं करना चाहिये जिससे अनर्थ पैदा हो। हंसराज ने जो आत्मघात किया उससे उसका कोई निस्तार नहीं हुआ। यदि जानते या अजानते अकृत्य हो जावे तो उस पर पश्चात्ताप करके उसकी शुद्धि करना ही पाप से छूटने का सर्वोत्तम उपाय है; आत्मघात करना नहीं।

(६) पदाधिकारी या राजा आदि को मर्यादा का पालन करना व कराना चाहिये परन्तु जहां राजा ही मर्यादा का भंग कर देता है वहां परिणाम क्या आता है और व्यभिचारी लोग किस प्रकार कुमौत मारे जाते हैं यह चन्द्रावती के राजा की दुर्घटना पर से समझा जा सकता है।

(७) चाहे कितनी भी आपत्ति आवे तो भी अपना धैर्य न खोना चाहिये परन्तु उससे बचने का उपाय सोचना चाहिये। सोचने से कोई न कोई युक्ति सूझ आती है जैसे कि कथा की नायिका सती ने युक्ति से काम लिया तो अपने प्राण एवं शील बचा सकी। इसी तरह जो आपत्ति के समय अधीर नहीं बनकर चातुरी से काम लेता है वह सफलता प्राप्त कर लेता है। इत्यलम्।

॥ समाप्तम् ॥

अब मैं इसे अपनी धर्म पत्नि बना कर रखना चाहता हूं। यदि तुम प्रसन्न होकर सम्मति दो। पटेल ने प्रसन्नता पूर्वक अर्ज की कि राज्येश्वर ! हम सब आप की प्रजा होने से आपकी आज्ञा को शिरोधार्य करना हमारा धर्म है। राजा ने उसे उचित पुरस्कार एवं साथ वाली स्त्रियों को हर्जाना देकर विदा की और सती को सम्मान पूर्वक ले गया।

वहां सती आनन्द पूर्वक रहती है। उसने रानियों तथा राज्य परिवार को सत् शिक्षा देकर भगवद्भजन में अपनी शेष जिन्दगी पूर्ण की और सबका कल्याण किया। इत्यलम्।

उपसंहार

कथा, चरित्र और वार्ताएँ हमारे लिए आदर्श (आरिसा) स्वरूप हैं। आरिसा अपने सन्मुख रखकर जिस प्रकार अपने अंग में, पोषाक में और श्रृंगार में रही हुई विकृतियों (कमियों) को दूर करके उसे सुन्दर शोभनीय एवं सुसंस्कारी बनाया जा सकता है उसी प्रकार कथाओं-चरित्रों से अपने जीवन की विकृतियों को दूर कर जीवन को आदर्श सुसंस्कारी एवं पवित्र बनाया जा सकता है। चाहिये हृदय की तैयारी।

उक्त आख्यायिका में हमारे वर्तमान जीवन का साक्षात् चित्र है। भारतीय असंस्कृत एवं अशिक्षित स्त्रियाँ जैन दर्शन की उच्च तात्विक फिलॉसफी को भूलकर स्वल्प भी कष्ट आया कि तुरन्त विना विचारे मानता—बोलमा कर लेती हैं और उसे पूरी करने के लिये पुरुषों को मजबूर करती हैं। इसका परिणाम क्या आता है कितने घोर कष्टों का शिकार बनना पड़ता है और अपना घर बार छूटकर कैसी बुरी दशा होती है यह इस कथा पर से समझ सकते हैं।

इस आख्यायिका में अन्य भी अनेक शिक्षाएँ ग्रहण करने

(१) जिस मनुष्य को परस्त्री के त्याग होते हैं और जो सच्चरित्र होता है वह हंसराज की तरह कुट्टनियों के जाल में नहीं फंसता है।

(२) पूर्व काल में धन का संचय केवल कुटुम्ब के मुखिया के हाथ रहता था अतः किसी को भी रकम की आवश्यकता होती तो उसे कुटुम्ब के नायक के आगे जाहिर करना पड़ता और वह उचित समझता तो अपनी सम्मति एवं रकम देता इससे कुटुम्ब में संगठन रहता और बड़े छोटे की यथा योग्य मान मर्यादा कायम रहती । कुटुम्ब का नायक भी सब पर समान दृष्टि से कुटुम्ब के प्रत्येक मनुष्य के सुख दुख को समझता और उसे दूर करने का भरसक प्रयत्न करता।

(३) माता का ममत्व एवं वात्सल्य पुत्र के प्रति होना स्वाभाविक है। और वह अपने पुत्र को कष्ट पाता हुआ नहीं देख सकती परन्तु वर्तमान समय के मनुष्य माता के प्रति कितना सद्भाव रखते हैं यह विचारणीय है। पूर्व काल की भारतीय शिक्षा ऐसी होती थी जिससे घर में सद्भावना एवं विनय का शिष्ट व्यवहार होता जिससे दोनों का जीवन सुखी रहता था। परन्तु कुछ अर्द्धदग्ध शिक्षित युवकों ने स्वतंत्रता के वातावरण को स्वच्छन्दता में परिणत करके मान मर्यादा तोड़ दी जिससे घर में शान्ति के बदले घोर अशान्ति और क्लेश मय जीवन बन गया है।

(४) शील धर्म स्त्री एवं पुरुषों के लिये समान रूप में आचरणीय होने पर भी यह केवल स्त्रियों के लिये ही निजर्व कायम कर पुरुष वर्ग ने उसे ठुकरा दिया है और स्वच्छन्दता

॰ अनाचार सेवन करने में ही अपने पुरुषत्व को सार्थक मान
ा है इसी से स्त्रियों में भी पुनर्विवाह आदि की भावना जागृत
लगी है। यदि पुरुष अपनी कामेच्छा पर संयम रखना सीखे
इस संसार को स्वर्ग बनने में देरी न लगे और विषमता रहने
पावे।

(५) प्रत्येक काम मनुष्य को सोच विचार कर करना
ये। आवेश में आकर कोई काम ऐसा नहीं करना चाहिये
से अनर्थ पैदा हो। हंसराज ने जो आत्मघात किया उससे
ा कोई निस्तार नहीं हुआ। यदि जानते या अजानते
थ हो जावे तो उस पर पश्चात्ताप करके उसकी शुद्धि करना
ाप से छूटने का सर्वोत्तम उपाय है; आत्मघात करना नहीं।

(६) पदाधिकारी या राजा आदि को मर्यादा का पालन
ा व कराना चाहिये परन्तु जहां राजा ही मर्यादा का भंग
देता है वहां परिणाम क्या आता है और व्यभिचारी लोग
प्रकार कुमौत मारे जाते हैं यह चन्द्रावती के राजा की
टना पर से समझा जा सकता है।

(७) चाहे कितनी भी आपत्ति आवे तो भी अपना धैर्य
खोना चाहिये परन्तु उससे बचने का उपाय सोचना चाहिये।
चने से कोई न कोई युक्ति सूझ आती है जैसे कि कथा की
यिका सती ने युक्ति से काम लिया तो अपने प्राण एव शील
चा सकी। इसी तरह जो आपत्ति के समय अधीर नहीं बनकर
ातुरी से काम लेता है वह सफलता प्राप्त कर लेता है। इत्यलम्।

॥ समाप्तम् ॥

(१) जिस मनुष्य को परस्त्री के त्याग होते हैं और जो सच्चरित्र होता है वह हंसराज की तरह कुट्टनियों के जाल में नहीं फंसता है।

(२) पूर्व काल में धन का संचय केवल कुटुम्ब के मुखिया के हाथ रहता था अतः किसी को भी रकम की आवश्यकता होती तो उसे कुटुम्ब के नायक के आगे जाहिर करना पड़ता और वह उचित समझता तो अपनी सम्मति एवं रकम देता इससे कुटुम्ब में संगठन रहता और बड़े छोटे की यथा योग्य मान मर्यादा कायम रहती । कुटुम्ब का नायक भी सब पर समान दृष्टि से कुटुम्ब के प्रत्येक मनुष्य के सुख दुख को समझता और उसे दूर करने का भरसक प्रयत्न करता।

(३) माता का ममत्व एवं वात्सल्य पुत्र के प्रति होना स्वाभाविक है। और वह अपने पुत्र को कष्ट पाता हुआ नहीं देख सकती परन्तु वर्तमान समय के मनुष्य माता के प्रति कितना सद्भाव रखते हैं यह विचारणीय है। पूर्व काल की भारतीय शिक्षा ऐसी होती थी जिससे घर में सद्भावना एवं विनय का शिष्ट व्यवहार होता जिससे दोनों का जीवन सुखी रहता था। परन्तु कुछ अर्द्धदग्ध शिक्षित युवकों ने स्वतंत्रता के वातावरण को स्वच्छन्दता में परिणत करके मान मर्यादा तोड़ दी जिससे घर में शान्ति के बदले घोर अशान्ति और क्लेश मय जीवन बन गया है।

(४) शील धर्म स्त्री एवं पुरुषों के लिये समान रूप से आचरणीय होने पर भी यह केवल स्त्रियों के लिये ही रिजर्व कायम कर पुरुष वर्ग ने उसे ठुकरा दिया है और स्वच्छन्दता

पूर्वक अनाचार सेवन करने में ही अपने पुरुषत्व को सार्थक मान लिया है इसी से स्त्रियों में भी पुनर्विवाह आदि की भावना जागृत होने लगी है। यदि पुरुष अपनी कामेच्छा पर संयम रखना सीखे तो इस संसार को स्वर्ग बनने में देरी न लगे और विषमता रहने ही न पावे।

(५) प्रत्येक काम मनुष्य को सोच विचार कर करना चाहिये। आवेश में आकर कोई काम ऐसा नहीं करना चाहिये जिससे अनर्थ पैदा हो। हंसराज ने जो आत्मघात किया उससे उसका कोई निस्तार नहीं हुआ। यदि जानते या अजानते दुष्कृत्य हो जावे तो उस पर पश्चात्ताप करके उसकी शुद्धि करना पाप से छूटने का सर्वोत्तम उपाय है; आत्मघात करना नहीं।

(६) पदाधिकारी या राजा आदि को मर्यादा का पालन करना व कराना चाहिये परन्तु जहां राजा ही मर्यादा का भंग कर देता है वहां परिणाम क्या आता है और व्यभिचारी लोग किस प्रकार कुमौत मारे जाते हैं यह चन्द्रावती के राजा की दुर्घटना पर से समझा जा सकता है।

(७) चाहे कितनी भी आपत्ति आवे तो भी अपना धैर्य न खोना चाहिये परन्तु उससे बचने का उपाय सोचना चाहिये। सोचने से कोई न कोई युक्ति सूझ आती है जैसे कि कथा की नायिका सती ने युक्ति से काम लिया तो अपने प्राण एवं शील बचा सकी। इसी तरह जो आपत्ति के समय अधीर नहीं बनकर चातुरी से काम लेता है वह सफलता प्राप्त कर लेता है। इत्यलम्।

॥ समाप्तम् ॥

(१) जिस मनुष्य को परस्त्री के त्याग होते हैं और जो सच्चरित्र होता है वह हंसराज की तरह कुट्टनियों के जाल में नहीं फंसता है।

(२) पूर्व काल में धन का संचय केवल कुटुम्ब के मुखिया के हाथ रहता था अतः किसी को भी रकम की आवश्यकता होती तो उसे कुटुम्ब के नायक के आगे जाहिर करना पड़ता और वह उचित समझता तो अपनी सम्मति एवं रकम देता इससे कुटुम्ब में संगठन रहता और बड़े छोटे की यथा योग्य मान मर्यादा कायम रहती। कुटुम्ब का नायक भी सब पर समान दृष्टि से कुटुम्ब के प्रत्येक मनुष्य के सुख दुख को समझता और उसे दूर करने का भरसक प्रयत्न करता।

(३) माता का ममत्व एवं वात्सल्य पुत्र के प्रति होना स्वाभाविक है। और वह अपने पुत्र को कष्ट पाता हुआ नहीं देख सकती परन्तु वर्तमान समय के मनुष्य माता के प्रति कितना सद्भाव रखते हैं यह विचारणीय है। पूर्व काल की भारतीय शिक्षा ऐसी होती थी जिससे घर में सद्भावना एवं विनय का शिष्ट व्यवहार होता जिससे दोनों का जीवन सुखी रहता था। परन्तु कुछ अर्द्धदग्ध शिक्षित युवकों ने स्वतंत्रता के वातावरण को स्वच्छन्दता में परिणत करके मान मर्यादा तोड़ दी जिससे घर में शान्ति के बदले घोर अशान्ति और क्लेश मय जीवन बन गया है।

(४) शील धर्म स्त्री एवं पुरुषों के लिये समान रूप से आचरणीय होने पर भी यह केवल स्त्रियों के लिये ही नियम कायम कर पुरुष वर्ग ने उसे ठुकरा दिया है और स्वच्छन्दता

पूर्वक अनाचार सेवन करने में ही अपने पुरुषत्व को सार्थक मान लिया है इसी से स्त्रियों में भी पुनर्विवाह आदि की भावना जागृत होने लगी है। यदि पुरुष अपनी कामेच्छा पर संयम रखना सीखे तो इस संसार को स्वर्ग बनने में देरी न लगे और विषमता रहने ही न पावे।

(५) प्रत्येक काम मनुष्य को सोच विचार कर करना चाहिये। आवेश में आकर कोई काम ऐसा नहीं करना चाहिये जिससे अनर्थ पैदा हो। हंसराज ने जो आत्मघात किया उससे उसका कोई निस्तार नहीं हुआ। यदि जानते या अजानते अकृत्य हो जावे तो उस पर पश्चात्ताप करके उसकी शुद्धि करना ही पाप से छूटने का सर्वोत्तम उपाय है; आत्मघात करना नहीं।

(६) पदाधिकारी या राजा आदि को मर्यादा का पालन करना व कराना चाहिये परन्तु जहां राजा ही मर्यादा का भंग कर देता है वहां परिणाम क्या आता है और व्यभिचारी लोग किस प्रकार कुमौत मारे जाते हैं यह चन्द्रावती के राजा की दुर्घटना पर से समझा जा सकता है।

(७) चाहे कितनी भी आपत्ति आवे तो भी अपना धैर्य न खोना चाहिये परन्तु उससे बचने का उपाय सोचना चाहिये। सोचने से कोई न कोई युक्ति सूझ आती है जैसे कि कथा की नायिका सती ने युक्ति से काम लिया तो अपने प्राण एव शील बचा सकी। इसी तरह जो आपत्ति के समय अधीर नहीं बनकर चातुरी से काम लेता है वह सफलता प्राप्त कर लेता है। इत्यलम्।

॥ समाप्तम् ॥

[illegible]

(२) [illegible] भरसक प्रयत्न करना।

(३) माता का ममत्व एवं वात्सल्य पुत्र के प्रति होना स्वाभाविक है। और वह अपने पुत्र को कष्ट पाता हुआ नहीं देख सकती परन्तु वर्तमान समय के मनुष्य माता के प्रति कितना सद्भाव रखते हैं यह विचारणीय है। पूर्व काल की भारतीय शिक्षा ऐसी होती थी जिससे घर में सद्भावना एवं विनय का शिष्ट व्यवहार होता जिससे दोनों का जीवन सुखी रहता था। परन्तु कुछ अर्द्धदग्ध शिक्षित युवकों ने स्वतंत्रता के वातावरण को स्वच्छन्दता में परिणत करके मान मर्यादा तोड़ दी जिससे घर में शान्ति के बदले घोर अशान्ति और क्लेश मय जीवन बन गया है।

(४) शील धर्म स्त्री एवं पुरुषों के लिये समान रूप से आचरणीय होने पर भी यह केवल स्त्रियों के लिये ही रिजर्व कायम कर पुरुष वर्ग ने उसे ठुकरा दिया है और स्वच्छन्दता

पूर्वक अनाचार सेवन करने में ही अपने पुरुषत्व को सार्थक मान लिया है इसी से स्त्रियों में भी पुनर्विवाह आदि की भावना जागृत होने लगी है। यदि पुरुष अपनी कामेच्छा पर संयम रखना सीखे तो इस संसार को स्वर्ग बनने में देरी न लगे और विषमता रहने ही न पावे।

(५) प्रत्येक काम मनुष्य को सोच विचार कर करना चाहिये। आवेश में आकर कोई काम ऐसा नहीं करना चाहिये जिससे अनर्थ पैदा हो। हंसराज ने जो आत्मघात किया उससे उसका कोई निस्तार नहीं हुआ। यदि जानते या अजानते अकृत्य हो जावे तो उस पर पश्चात्ताप करके उसकी शुद्धि करना ही पाप से छूटने का सर्वोत्तम उपाय है; आत्मघात करना नहीं।

(६) पदाधिकारी या राजा आदि को मर्यादा का पालन करना व कराना चाहिये परन्तु जहां राजा ही मर्यादा का भंग कर देता है वहां परिणाम क्या आता है और व्यभिचारी लोग किस प्रकार कुमौत मारे जाते हैं यह चन्द्रावती के राजा की दुर्घटना पर से समझा जा सकता है।

(७) चाहे कितनी भी आपत्ति आवे तो भी अपना धैर्य न खोना चाहिये परन्तु उससे बचने का उपाय सोचना चाहिये। सोचने से कोई न कोई युक्ति सूझ आती है जैसे कि कथा की नायिका सती ने युक्ति से काम लिया तो अपने प्राण एवं शील बचा सकी। इसी तरह जो आपत्ति के समय अधीर नहीं बनकर चातुरी से काम लेता है वह सफलता प्राप्त कर लेता है। इत्यलम्।

॥ समाप्तम् ॥